सुलभ साहित्य-माला दूसरा पुष्प

शरत्-साहित्य

(दूसरा भाग)

स्वामी, वैकुंठका दानपत्र, अन्धकारमें आलोक

२

अनुवादकर्त्ता—
रामचन्द्र वर्मा

हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय, बम्बई

प्रकाशक—
नाथूराम प्रेमी,
हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय,
हीराबाग, बम्बई नं० ४

तीसरी आवृत्ति
मई, १९४२

मुद्रक—
रघुनाथ दिपाजी देसाई,
न्यू भारत प्रिंटिंग प्रेस,
६, केलेवाड़ी, गिरगाँव बम्बई.

स्वामी

बापूजीने ही मेरा नाम 'सौदामिनी' रखा था। मैं प्रायः सोचा करती हूँ कि एक बरससे ज्यादा तो मुझे वे आँखों देख नहीं पाये; फिर भी वे इस प्रकारका,—अन्दर और बाहर ठीक बैठनेवाला नाम कैसे रख गये? बीज-मन्त्रकी तरहके नामके इस एक ही शब्दमें मानो मेरे समस्त भावी जीवनका वे इतिहास प्रकट कर गये।

रूप?—हाँ है, मैं मानती हूँ। लेकिन, उसका मुझे कोई अभिमान नहीं। कलेजा चीरकर नहीं दिखलाया जा सकता, नहीं तो मैं इसी समय दिखला देती कि रूपको लेकर अभिमान करनेके लिए मेरे पास अब कुछ भी बाकी नहीं है; एकबारगी कुछ नहीं।—अठारह-उन्नीस? हाँ, अन्दाज़न यही। उम्र मेरी उन्नीसकी ही है। बाहरी देह मेरी इससे अधिक पुरानी नहीं हो पाई है, पर इस हृदयके भीतर उन्नासी बरसके सूखे हाड़ोंको लेकर जो बुढ़िया निवास करती है, उसे तुम नहीं देख पाते। अगर देख सकते तो मारे डरके चौंक उठते।

सूने घरमें भी मुझे जब कभी याद आ जाती है, तब आज भी मारे लज्जाके मर जानेकी इच्छा होती है। तब फिर यह कलंककी स्याही कागज़पर ढोल देनेकी क्या आवश्यकता थी?—लज्जाका संपूर्ण परित्याग करके ही तो आज मुझे सब कुछ कहना पड़ेगा, नहीं तो मेरी मुक्ति कैसे होगी?

सब लड़कियोंकी तरह मैंने भी तो अपने स्वामीको विवाहके मन्त्रोंके भीतरसे ही प्राप्त किया था। तब क्यों स्वामीपर मेरा अनुराग नहीं हुआ? इसीलिए इसका जो दाम मुझे चुकाना पड़ा है उसकी मैं अपने बड़ेसे बड़े शत्रुके लिए भी कामना नहीं करती। परन्तु दाम तो मुझे चुकाना ही पड़ा। जो समस्त पाप-पुण्य, हानि-लाभ और न्याय-अन्यायका मालिक है, उसने

मेरे साथ ज़रा भी रिआयत नहीं की। अब उसने कौड़ी-पाई तकका हिसाब करके सारा दाम वसूल करके मेरा सर्वस्व ले लिया और मुझे रास्तेपर छोड़ दिया,—लज्जा-शरमको जब कहीं कुछ बाकी नहीं छोड़ा, तभी दिखलाई दिया कि,—अरे, सत्यानाशिनी, तूने यह क्या किया? तेरा स्वामी ही तो तेरी आत्मा है। उसे छोड़कर तू जायगी कहाँ! एक न एक दिन मुझे अपने शून्य हृदयमें उसे स्थान देना ही पड़ेगा। इस जन्ममें हो, अगले जन्ममें हो,—करोड़ जन्मके बाद हो, पर जो तेरा है वह तो तुझे चाहिए ही, क्यों कि तू ठहरी जो केवल उसीकी!

जानती हूँ कि जो कुछ मैंने गँवाया है उसका अनन्त गुना आज मैं फिर पा गई हूँ। लेकिन फिर भी मैं यह बात किसी तरह नहीं भूल सकती कि मेरा यह शरीर नारीका है। आज आनन्द रखनेके लिए जगह नहीं है, परन्तु मुझे अपनी व्यथा रखनेके लिए भी तो जगह नहीं देख पड़ती प्रभो! इस शरीरका प्रत्येक अणु-परमाणु तक दिन-रात रोता और चिल्लाता है कि— अरी अस्पृश्या! अरी पतिता! हम लोगोंको बाँध रखकर अब और मत जला। हम लोगोंको छुट्टी दे दे, हम मरकर एकबारगी छुट्टी पा जायँ।

लेकिन खैर; इस बातको रहने दो।

बाबूजी मर गये; एक बरसकी लड़कीको लेकर मेरी मा अपने मैके चली आई। मामाके कोई लड़का-बाला था नहीं, इसलिए गरीबी होनेपर भी वहाँ मेरे आदर और दुलारमें कोई कमी नहीं हुई। बड़ी उम्रतक मैंने उनके पास बैठकर अँग्रेजी हिन्दीकी न जाने कितनी किताबें पढ़ डालीं।

मामा घोर नास्तिक थे। वह देवी-देवता कुछ नहीं मानते थे। घरपर कभी मैंने पूजा-अर्चना बार-त्यौहार मनाते उन्हें नहीं देखा। यह सब वे फूटी आँखों भी नहीं देख सकते थे।

वे नास्तिक नहीं तो क्या थे? मामा अपने मुँहसे प्रायः कहा करते थे कि मैं 'अग्नॉस्टिक'* हूँ। लेकिन यह भी तो एक बड़ी भारी वञ्चना थी। कहते हैं कि जिन लोगोंने पहले-पहल इस मतका आविष्कार किया था, उन्होंने केवल

* Agnostic उन लोगोंको कहते हैं जो दृढ़तापूर्वक यह तो नहीं कहते कि ईश्वरका अस्तित्व है ही नहीं, पर जो यह कहते हैं कि ईश्वरके अस्तित्वका कोई ठीक ठीक प्रमाण नहीं है और इसलिए ईश्वरका अस्तित्व माना नहीं जा सकता। —अनुवादक।

लोगोंकी आँखोंमें धूल झोंकनेके लिए ही अपनी इस आद्यन्त प्रवंचनाके पीछे आकाश-पाताल एक करनेवाली एक और दूसरी प्रवंचना जोड़कर किसी तरह आत्म-रक्षा की थी।—पर क्या उस समय मैं ये सब बातें खाक समझती थी! असल बात यह है कि सूर्यकी अपेक्षा उससे तपे हुए बालूके संयोगसे ही शरीरमें अधिक फफोले पड़ते हैं। मेरे मामाकी भी ठीक यही दशा हुई थी।

मैं समझती हूँ कि केवल मेरी मा लुक-छिपकर कुछ किया करती थीं, पर उसे सिवा मेरे और कोई नहीं जान पाता था।—सो, मा भले ही जो जीमें आवे करें, पर मैंने मामाकी विद्या सोलह आनेकी जगह अठारह आने सीख ली थी।

मुझे खूब अच्छी तरह याद है कि दरवाजेमें साधु-सेन्यासियोंके आकर खड़े होते ही मैं दौड़कर स्वाँग देखनेके लिए अपने मामाको बुला लाती थी। वे उन लोगोंके साथ ऐसा मज़ाक़ शुरू कर देते थे कि उन बेचारोंको भागनेका भी रास्ता नहीं मिलता था। मैं हँसती और तालियाँ बजाती हुई जमीनपर लोट लोट जाती थी। इसी तरह दिन कट रहे थे।

केवल मा कभी कभी एक भारी बखेड़ा खड़ा कर दिया करती थीं। वे मुँह भारी कर आ पहुँचतीं और कहतीं, "भइया, सुदू दिन दिन बड़ी होती जाती है। अगर अभीसे इसके लिए कुछ ढूँढ़-खोज न करोगे तो समयपर ब्याह कैसे होगा?"

मामा आश्चर्यसे कहते, "गिरी, तुम कैसी बातें करती हो! तुम्हारी लड़की अभी पूरे बारह बरसकी भी तो हुई नहीं—अभीसे ही तुम्हें इसकी इतनी चिन्ता क्यों हो गई? साहब लोगोंकी लड़कियाँ तो इस उम्रमें—"

मा रुँधे हुए गलेसे उत्तर देतीं, "तुम साहब लोगोंकी बात क्यों चलाते हो भइया, हम लोग तो कुछ साहब नहीं हैं! अगर तुम देवी-देवताओंको न मानो तो वे कुछ तुमसे झगड़ा करने नहीं आते। पर महल्ले-टोले और बस्तीका समाज भी तो है! उसे तुम किस तरह उड़ा दोगे?"

मामा हँसकर कहते, "चिन्ता न करो बहन, मैं सब जानता हूँ। मैं जिस तरह हँसकर तुम्हें उड़ा देता हूँ, ठीक उसी तरह इस पाजी समाजको भी हँसकर उड़ा दूँगा।"

मा मुँह भारी करके बड़बड़ाती हुई वहाँसे उठ जातीं। मामा तो इसकी परवा नहीं करते थे, पर मुझे बहुत डर लगता था। न जाने कैसे मैं समझ जाती

थी कि मामा यों जो चाहें कहें, पर मासे वे किसी तरह मेरी रक्षा न कर सकेंगे।

अब मैं यह भी बतला देना चाहती हूँ कि ब्याहकी बात सुनते ही मुझे क्यों डर लगने लगा था। हमारी बस्तीके पश्चिमी महल्लेकी छाती चीरकर एक नाला गाँव-भरका बरसाती पानी नदीमें पहुँचाता था। उस नालेके दोनों ओर दो मकान थे जिनमेंसे एक हमारा था और दूसरा उस गाँवके जमींदार विपिन मजूमदारका। मजूमदार-वंश जितना ही धनी था उतना ही दुर्दमनीय भी था। गाँवके भीतर और बाहर सर्वत्र ही उसके प्रतापकी सीमा न थी और इस वंशका एक-मात्र वंशधर था नरेन्द्र।

आज इतनी बड़ी झूठ मुँहपर लाते हुए मेरा कैसा जी होता है, सो मेरे अंतर्यामीके सिवा और कोई नहीं जान सकता; परन्तु उस समय मैं समझती थी कि यह बिलकुल सच है,—मैं सचमुच ही नरेन्द्रसे प्रेम करती हूँ।

मैं नहीं कह सकती कि पहले-पहल मेरे मनमें यह मोह कब उत्पन्न हुआ। कलकत्तेमें वह बी० ए० में पढ़ता था और छुट्टियोंमें जब घर आता, मामाके साथ दर्शन-शास्त्रकी आलोचना करने प्रायः आया करता था। मैं समझती हूँ कि लिखे-पढ़े लोगोंमें उन दिनों अग्नास्टिसिज्म एक फैशन थी और प्रायः इसी विषयको लेकर अधिकांश तर्क-वितर्क हुआ करता था। अक्सर मेरे मामा अपना गौरव दिखानेको नरेन्द्र बाबूके तर्कोंका उत्तर देनेके लिए मुझे बुला लिया करते थे। कितनी ही बार बात-चीत होते होते रात भी हो जाती थी, फिर भी दोनोंके तर्कोंकी कोई मीमांसा नहीं हो पाती थी। परन्तु जीत प्रायः मेरी ही होती थी और इसका कारण भी आज मुझसे छिपा नहीं है!

बीच-बीचमें सहसा तर्क वितर्कको रोककर मामाके मुँहकी ओर देखकर बहुत गहरे आश्चर्यके साथ नरेन्द्र कह बैठता, "अच्छा व्रज बाबू, इस उम्रमें तर्क-शास्त्रका इतना ज्ञान, और तर्क करनेकी ऐसी आश्चर्य-जनक शक्ति,—इसको क्या आप एक फिनोमेनान (=अद्भुत और आश्चर्यजनक वस्तु) नहीं समझते?"

मैं गर्व और सौभाग्यसे सिर झुका लेती।—ओरी अभागिनी! उस समय तेरा यह सिर एक बार कटकर सदाके लिए मिट्टीमें क्यों न मिल गया!

मामा भी अपने मुखपर एक ऊँचे दर्जेकी हँसी लाकर कहते, "क्या जाने नरेन्द्र, शायद यह सब केवल सिखानेकी केपॅसिटी (=शक्ति) ही हो।"

परन्तु मुझे यह तर्क-वितर्क उतना अच्छा न लगता था जितना उसके मुँहसे

'माण्टिक्रिस्टो' की कहानी। परन्तु उधर कहानी भी खत्म नहीं होना चाहती थी और इधर मेरी अधीरताकी भी कोई सीमा नहीं रहती थी। सबेरे सोकर उठनेके समयसे लेकर दिन-भरमें सौ बार मैं यही सोचती थी कि कब सन्ध्या होगी और कब नरेन्द्र बाबू आवेंगे।

इस प्रकार तर्क करते और कहानियाँ सुनते सुनते मेरी ब्याहकी उम्र बारहको लाँघकर तेरहवें वर्षके अंतमें पहुँच गई, फिर भी मेरा ब्याह नहीं हुआ।

वर्षाके नवयौवनके दिनोंमें मजूमदारके बगीचेके एक बहुत बड़े बकुल वृक्षका तल-देश झरे हुए फूलोंके ढेरसे भर जाता था। मैं अपने बगीचेके किनारेके उस नालेको पार करके वहाँसे बहुतसे फूल हर-रोज चुन लाया करती थी। उस दिन तीसरे पहर आकाशमें खूब बादल छाये हुए थे, पर मैं उनकी उपेक्षा करके जल्दी जल्दी फूल लाने जा रही थी। माने कहा, "तू दौड़ी हुई तो जा रही है, पर पानी आ गया तो?"

मैंने कहा, "नहीं मा, अभी पानी नहीं आवेगा। मैं जल्दीसे जाकर थोड़ेसे फूल बीने लाती हूँ।"

माने कहा, "देख, दस-पन्द्रह मिनटके अन्दर ही पानी आवेगा। मेरी बात मान, मत जा। इस कुबेलामें अगर भीग गई, तो कहे देती हूँ, सिरके बालोंका यह बोझा सूखेगा नहीं।"

मैंने कहा, "तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ मा, मुझे जाने दो। अगर पानी बरसने लगेगा तो मैं मालियोंके छप्परमें जाकर खड़ी हो जाऊँगी।" यह कहते-कहते ही मैं भाग गई। अपनी माकी अकेली लड़की थी, इसलिए वे मुझे किसी तरह दुःख नहीं दे सकती थीं, और लड़कपनसे ही फूलोंपर मेरा जो अधिक प्रेम था उसे भी वे जानती थीं इसलिए चुप रह गईं। कितनी ही बार मेरे मनमें यह बात आती है कि मा, अगर उस दिन तुम इस हतभागिनीको झोंटा पकड़कर खींच लातीं, तो शायद मैं इस तरह तुम्हारे मुँहपर कालिख न पोतती!

मालसिरीके फूलोंसे मेरी झोली प्रायः भर चली थी कि माने जो कुछ कहा था, वही हुआ। झर झर पानी बरसने लगा। मैं दौड़कर मालियोंके छप्परके नीचे जा खड़ी हुई। उस समय वहाँ और कोई नहीं था और मैं एक खम्भेके सहारे खड़ी होकर बादलोंकी ओर देखती हुई कुछ सोच रही थी कि इतनेमें कोई दौड़ता हुआ उस छप्परके अन्दर घुस आया। मैंने

मुँह फेरकर देखा : ओ मा ! ये तो नरेन्द्र बाबू हैं ! मैंने तो सुना ही नहीं था कि कलकत्तेसे घर लौट आये हैं !

मुझे देखते ही उसने चौंककर कहा, "अरे सदु ! तुम यहाँ कहाँ ?"

इधर बहुत दिनोंसे मैंने उसे देखा नहीं था,—बहुत दिनोंसे उसकी आवाज नहीं सुनी थी, मेरे हृदयमें मानो आनन्दकी हिलोर आ गई। मारे लज्जाके मेरे कान तक लाल हो गये। मुँहकी ओर देखकर मैं उत्तर भी न दे सकी, जमीनकी ओर देखते हुए ही बोली, "मैं तो रोज ही यहाँ फूल चुनने आया करती हूँ।—कब आये ?"

नरेन्द्रने मालियोंकी एक टूटी खाट खींच ली और उसपर बैठकर कहा, "आज ही सबेरे,—पर यह तो कहो, तुम किसके हुक्मसे ये फूल चुरा ले जातीं हो ?"

मैंने उसकी गम्भीर आवाज़से चकित होकर सहसा सिर उठाकर देखा : उसकी दोनों आँखें दबाई हुई हँसीसे नाच रही हैं।

लज्जा ! लज्जा !—इस जले मुँहपर भी न जाने उस समय कहाँसे हँसी आ गई। मैंने कहा, "वाह, मेहनत करके चुन लेनेको भी क्या चोरी कहते हैं ?" नरेन्द्र चट उठकर खड़ा हो गया और बोला, "और तुमने जो ये फूल चुनकर अपनी झोलीमें भर लिये हैं, उन्हें यदि मैं फिर तुम्हारी झोलीमेंसे चुनकर निकाल लूँ तो इसे क्या कहेंगे ?"

न जाने क्यों उस समय मुझे भय हुआ। मैंने सोचा कि सचमुच ही यह आगे बढ़कर मेरा आँचल पकड़ लेगा। यद्यपि मैं आँचलको मुट्ठीसे पकड़े हुए थी पर मुट्ठी खुल गई, आँचल खुल गया और पल भरमें वे सारे फूल जमीनपर गिरकर बिखर गये।

"हैं ! यह क्या किया ?"

मैंने किसी तरह अपने आपको सँभालकर कहा, "आपके ही तो फूल हैं। अच्छा तो है, आप चुन लीजिए।"

"अरे, रूठ गईं !" यह कहकर नरेन्द्रने आगे बढ़कर मेरा आँचल खींच लिया और वह फूल उठाकर उसमें रखने लगा। हठात् न जाने क्यों मेरी आँखें जलसे भर गईं, मैंने जबरदस्ती अपना मुँह फेर लिया और मैं दूसरी तरफ देखने लगी।

नरेन्द्रने सब फूल मेरे आँचलमें भर दिये और उसमें अच्छी तरह एक गाँठ लगा दी। फिर वह अपनी जगहपर चला गया। वहाँसे थोड़ी देर चुपचाप मेरे

मुँहकी ओर देखता रहा और बोला, "जो मामूली हँसी-ठट्टेकी बात भी न समझ सके और इतनी ज़रा-सी बातपर बिगड़ जाय, भला वह दर्शन-शास्त्र क्यों पढ़े? मैं कल ही ब्रज बाबूसे कह दूँगा कि वे व्यर्थका परिश्रम न करें।"

मैंने अपनी आँखें पहले ही पोंछ डाली थीं। कहा, "बिगड़ा कौन है?"

"जिसने फूल फेंक दिये।"

"फूल तो आप ही गिर पड़े थे।"

"मुँह भी, समझता हूँ, आपसे आप दूसरी ओर हो गया है?"

"मैं तो बादलोंकी तरफ देख रही हूँ।"

"बादल शायद इस तरफ मुँह करके नहीं देखे जा सकते?

"कहाँ दिखाई पड़ते हैं? कहकर ज्यों ही मैंने भूलसे मुँह फेरा, त्यों ही अचानक मेरी और उसकी आँखें चार हो गईं। नरेन्द्रने हँसते हुए कहा, "अगर यहाँ एक शीशा होता तो मैं दिखला देता कि इस तरफसे भी बादल दिखाई पड़ते हैं या नहीं। तुम स्वयं अपने मुँह और आँखोंमें ही बादल और बिजली दोनों एक साथ देख सकतीं, कष्ट करके उन्हें आकाशमें न ढूँढ़ना पड़ता!"

मैंने उसी समय आँखें फेर लीं। मैंने रूपकी प्रशंसा बहुत सुनी है, लेकिन नरेन्द्रकी दबी हुई हँसी और दबे हुए इशारेने उस दिन मेरी छातीमें प्रवेश करके मानो मेरे हृत्पिंडको खूब जोरसे हिला डाला। यह है तो अबसे पाँच बरस पहलेकी ही बात, पर आज मुझे ऐसा जान पड़ता है कि वह सौदामिनी मैं नहीं, कोई और ही थी।

नरेन्द्रने कहा, "यदि यह बादल न हटा तो मैं ब्रज बाबूसे कह दूँगा कि आपका लिखना-पढ़ना सिखाना बिलकुल व्यर्थ है, अब आप और कष्ट न करें।"

मैंने कहा, "यह तो अच्छी बात है, मैं तो वह सब पढ़ना भी नहीं चाहती। मुझे तो कहानियोंकी किताबें ही अच्छी लगती हैं।"

नरेन्द्र ताली बजाकर कह उठा, "अच्छा ठहरो, कहे देता हूँ,—शायद आजकल उपन्यास पढ़े जाते हैं?"

मैंने कहा, "तो फिर आप ही क्यों कहानियोंकी किताबें पढ़ते हैं।"

नरेन्द्रने कहा, "वह तो मैं सिर्फ़ तुम्हें सुनानेके लिए पढ़ता हूँ, अन्यथा कभी नहीं पढ़ता।" फिर वृष्टिको ओर देखकर कहा, "अच्छा अगर आज यह पानी न रुके, तो क्या करोगी?"

मैंने कहा, "यों ही भीगती हुई घर चली जाऊँगी।"

अच्छा, अगर यह आसाम-जैसी पहाड़ी वृष्टि हो तो क्या करो ?"

कहानियाँ सदासे ही मुझे अच्छी लगती हैं। उसकी ज़रा-सी गन्ध मिलते ही मेरी दृष्टि तुरन्त ही आकाशसे उतरकर नरेन्द्रके मुखपर आ गई। मैं पूछ बैठी, "तो क्या उस देशमें वर्षाके समय कोई बाहर नहीं निकलता ?"

नरेन्द्र बोला, "बिलकुल नहीं। शरीरमें तीरकी तरह लगती है।"

"अच्छा, क्या तुमने वह वृष्टि देखी है ?"

इस बार मेरे इस जले मुँहसे 'तुम' बाहर निकल गया। अब सोचती हूँ कि उस समय यह जीभ भी साथ ही साथ मुँहसे गलकर गिर जाती, तो बहुत अच्छा होता !

उसने कहा, "अब इसके बाद अगर कोई किसीको 'आप' कहे, तो वह दूसरेका मरा-मुँह देखे।"

"कसम क्यों दिला दी ? मैं तो किसी तरह भी 'तुम' न कहूँगी।"

"अच्छी बात है; तो फिर तुम मेरा मरा-मुँह देखना।"

"कसम कोई चीज़ नहीं। मैं उसे नहीं मानती।"

"कैसे नहीं मानतीं ?—यह एक बार 'आप' कहकर प्रमाणित कर दो न।"

मैं मन ही मन बिगड़कर बोली : मुँह-जली ! अब वह तेरा झूठा तेज कहाँ रहा ! मुँहसे तो किसी तरह 'आप' निकाल ही न सकी ! किन्तु दुर्गतिका यदि उस दिन ही यहीं अन्त हो जाता !

धीरे धीरे आकाशसे पानी गिरना कुछ कम हुआ, किन्तु पृथ्वीके जलने मानो सारी दुनियाको घोलकर एकाकार कर दिया। सन्ध्या हो रही थी। थोड़ेसे फूलोंको आँचलमें बाँधकर कीचड़-भरे बागके रास्ते मैं चल पड़ी।

नरेन्द्र बोला, "चलो, तुम्हें पहुँचा आऊँ।"

मैंने कहा, "नहीं।"

मनने मानो कह दिया कि यह अच्छा नहीं हो रहा है। पर भाग्यमें लिखेको कैसे मिटा सकती थी ? बागके किनारे आकर मारे भयके मेरी अक़्लने जवाब दे दिया।—सारा नाला जलसे भरा हुआ था, पार कैसे होऊँ ?

नरेन्द्र मेरे साथ नहीं आया, वहीं खड़ा-खड़ा देखता रहा। जब उसने मुझे कुछ देर तक वहीं चुपचाप खड़े देखा, तब उसे अवस्था समझनेमें देर न लगी। उसने पास आकर पूछा, "अब क्या करोगी ?"

मैंने कहा, "नालेमें डूब मरूँ तो अच्छा, पर अकेले इतनी दूर सदर रास्तेसे घूमकर तो मुझसे किसी तरह न जाया जायगा। मा देखेंगी तो—"

मैं अपनी बात समाप्त करने ही न पाई थी कि नरेन्द्रने हँसकर कहा, "तो फिर अच्छी बात है, चलो, तुम्हें उस पेड़के तनेपरसे उस पार कर दूँ।"

मैंने सोचा कि यह बहुत अच्छा हुआ। मन ही मन बहुत प्रसन्न हुई। इतनी देर तक मुझे याद ही नहीं आया था कि पास ही आँधीसे उखड़ा हुआ एक बहुत बड़ा जंगली पेड़ बहुत दिनोंसे इस नालेपर एक पुलकी तरह पड़ा हुआ है। उसपरसे लड़कपनमें मैं स्वयं ही नालेके इस पारसे उस पार और उस पारसे इस पार आया-जाया करती थी।

मैंने प्रसन्न होकर कहा, "तो चलो।"

नरेद्रने और भी कहीं अधिक प्रसन्न होकर कहा, "तुम्हारा इस तरह 'चलो' कहना कितना मीठा लगता है!"

मैंने कहा, "जाओ!"

वह बोला, "बिना तुम्हें निर्विघ्न उस पार पहुँचाये क्या मैं अब जा सकता हूँ?"

मैं बोली, "क्या तुम मुझे पार लगानेवाले कर्णधार हो?"

आज भी मेरी समझमें यह नहीं आता कि यह बात उस समय किस तरह मेरे मनमें आई और किस तरह मुँहसे बाहर निकली। पर नरेन्द्र जब मेरे मुँहकी ओर देखकर ज़रा हँसकर बोला, "देखो, यदि मैं कर्णधार बन सका," तब मैं मानो घृणा और लज्जासे मर गई!

वहाँ पहुँचकर देखा कि पार होना सहज नहीं है। एक तो उस जगह वृक्षोंकी छायाके कारण अन्धकार था; तिसपर पानीमें भीगनेके कारण उस पेड़पर बहुत फिसलन हो गई थी और वह ऊँचा-नीचा भी हो रहा था। उसके नीचेसे वृष्टिका सारा जल भरभराता हुआ बह रहा था। मैं एक बार पैर आगे बढ़ाती और फिर पीछेकी ओर खींच लेती थी। कुछ देरतक देखते रहनेके बाद नरेन्द्रने कहा, "मेरा हाथ पकड़कर चल सकोगी?"

मैंने कहा, "हाँ।"

लेकिन उसका हाथ पकड़कर मैंने एक ऐसी विषम अवस्था उत्पन्न कर दी कि उसने बड़ी मुश्किलसे धक्केको सँभाल पाया और इस ओरको छलांग मारकर अपनी रक्षा की। पहले तो वह कुछ समयतक चुपचाप मेरी ओर देखता रहा, फिर तुरन्त ही उसकी दोनों आँखें मानों चमक उठीं। बोला, "देखोगी कि सचमुच ही मैं तुम्हारा कर्णधार हो सकता हूँ या नहीं?"

मैंने चकित होकर पूछा " कैसे ? "

" देखो इस तरह ! " कहकर और झुककर नरेन्द्रने मेरे दोनों घुटनोंके नीचे अपना एक हाथ डाला और गरदनके नीचे दूसरा, फिर पलक मारते ही मुझे उठाकर और छातीसे लगाकर वह उस पेड़पर पैर रखकर खड़ा हो गया। मारे भयके मैंने आँखें बन्द कर लीं और अपना बायाँ हाथ उसके गलेमें डालकर उसे जोरसे पकड़ लिया। नरेन्द्र जल्दीसे पार होकर फिर इस पार आ गया; परन्तु मुझे अपनी गोदसे उतारनेके पहले उसने मेरे दोनों होंठ मानो बिलकुल जला दिये !—परन्तु, जाने दो उस बातको। क्या वह कोई ऐसी मामूली घृणाकी बात है, जिससे इस शरीरका प्रत्येक अंग दिन-रात गलेमें फाँसी लगाकर मर जाना चाहता है !

मैं काँपती काँपती घर चली आई। मेरे दोनों होंठ उसी तरह जल रहे थे; परन्तु, वह ज्वाला लाल मिर्चकी ज्वालाकी तरह जितनी ही जलाने लगी, ज्वालाकी तृष्णा उतनी ही बढ़ती जाने लगी।

माने कहा " सौदामिनी, खूब लड़की है तू ! भला तू इस पार आई किस तरह ? मैं तो जाकर देख आई कि सारा नाला पानीसे जलमय हो रहा है। मालूम होता है कि उसी पेड़परसे होकर आई है ! गिरकर मर न गई ? "

—नहीं मा, यदि मैंने ऐसा ही पुण्य किया होता तो फिर आज यह कहानी लिखनेकी आवश्यकता ही क्यों होती ?

दूसरे दिन नरेन्द्र मामासे मिलने आया। मैं वहीं बैठी हुई थी। मैं उसकी ओर देख तो नहीं सकी, पर मेरे सारे शरीरमें काँटे उठ आये। जीमें आया कि मैं यहाँसे उठकर भाग जाऊँ, लेकिन उस कमरेकी पक्की जमीन मानो चोर-बालूकी तरह मेरे दोनों पैरोंको धीरे धीरे निगलने लगी। मैं वहाँसे हिल भी न सकी और आँख उठाकर नरेन्द्रकी ओर देख भी न सकी।

नरेन्द्रको क्या बीमारी हुई, यह तो शैतान ही जाने, पर इसके बाद वह बहुत दिनोंतक कलकत्ते नहीं गया। रोज़ ही साक्षात् होने लगा। मा बीच-बीचमें नाराज़ होकर मुझे आड़में ले जाकर कहने लगीं " मरदोंमें आपसमें लिखने-पढ़नेकी बात होती है, तू वहाँ उन लोगोंके बीचमें क्या सुनने बैठ जाती है ? चल, अन्दर चल। इतनी बड़ी हो गई, पर लज्जा और शरम ज़रा भी नहीं। "

मैं चुपचाप धीरे-धीरे अपने कमरेमें चली जाती, पर वहाँ किसी काममें

मन नहीं लगा सकती। जितनी देरतक वह रहता उतनी देरतक उसका अस्पष्ट कंठ-स्वर बराबर मुझे बाहरकी ओर ही खींचता रहता।

मेरे मामामें और चाहे जो हो, पर उनका मन दाव-पेंच नहीं जानता था। इसके सिवा लिखने-पढ़ने और तर्क करके भगवानको उड़ा देनेके फेरमें ही उनका अन्तःकरण सदा इतना व्यस्त रहता था कि उन्हें अपनी नाकके ठीक सामने घटनेवाली घटना भी दिखाई नहीं पड़ती थी। मैं यह एक बहुत मज़ेकी बात देखती हूँ कि संसारके सबसे अधिक प्रसिद्ध नास्तिक सबसे बढ़कर बेवकूफ भी रहे हैं। भगवानकी लीलाका अन्त नहीं है; ये अपने इस 'न' रूपमें ही उनके मनका पन्द्रह आना भाग भरे रहते हैं, इस बातका उन्हें ख़याल ही नहीं आता! चाहे सप्रमाण रूपमें ही चाहे अप्रमाण, उन्हीं भगवानकी भावनामें अपना सारा दिन बिताकर वे कहते हैं : संसारके लोग कैसे बेवकूफ हैं जो शाम-सबेरे बैठकर बीच-बीचमें भगवानकी चिन्ता किया करते हैं!—मेरे मामाकी भी ठीक यही दशा थी, वे कुछ भी नहीं देख सकते थे। पर मेरी मा तो वैसी नहीं थीं। वह भी मेरी तरह स्त्री थीं, इससे उनकी आँखोंको धोखा देना उतना सहज नहीं था। मैं निश्चयसे जानती हूँ कि माको हम लोगोंपर सन्देह हो गया था।

और फिर यह बात नहीं है कि केवल मेरी मा ही यह जानती हो कि सम्बन्ध होनेमें हम दोनोंके बीच सामाजिक बाधा कितनी अधिक है, मैं भी समझती थी। पर उसका विचार करते ही मेरे हृदयका सारा रस सूखकर काठ हो जाता था, इसलिए उस विचारके इस भद्दे अंगको मैं सदा दोनों हाथोंसे ढकेलकर अपनेसे दूर ही रखती थी; परन्तु साथमें यह भी समझती थी कि मैं शत्रुके बदले स्वयं मित्रको ही ढकेलकर अपनेसे दूर रख रही हूँ। परन्तु समझनेसे क्या होता है? जो शराबी एक बार खालिस शराब पीना सीख लेता है, उसे पानी मिली हुई शराब थोड़े ही अच्छी लगती है! तब तो निर्जल विषकी ज्वालासे ही अपना कलेजा जलानेमें उसे बहुत अधिक सुख मिलता है!

एक बात और भी थी जिसे मैं किसी तरह कभी अपने मनसे नहीं भुला सकती थी, वह था मजूमदार घरानेके लोगोंका ऐश्वर्य। बचपनमें अपनी माके साथ मैं अनेक बार उनके घर गई थी। उनके घर-बार, तसवीरें, दीवारगीरें, आलमारियाँ, सन्दूक और दूसरे साज-सामानके साथ अपनी

भावी ससुरालके किसी छोटे-मोटे एकतल्ले मकानकी बेहूदा मूर्तिकी तुलना करके मैं मन-ही मन मानो सिहर उठती थी।

कोई एक महीने बाद एक दिन मैं सवेरे नदीसे स्नान करके घर लौटी थी, घरके अन्दर पैर रखते ही देखा कि बरामदेमें एक प्रौढा विधवा स्त्री मेरी माँके पास बैठी हुई बातें कर रही है। मुझे देखते ही उसने पूछा "यही लड़की है ?"

माने सिर हिलाकर कहा, "हाँ, यही लड़की है। ज़रा इसकी बाढ़ ही कुछ ज्यादा है। नहीं तो—"

उस स्त्रीने हँसकर कहा, "सो हुआ करे। लड़केकी अवस्था भी प्रायः तीस वर्षकी है। दोनोंका जोड़ खूब होगा। यों कहनेको तो यह उसका दूसरा ब्याह होगा, पर देखनेमें है बिल्कुल कार्तिकेय जैसा।"

मैं जल्दीसे अन्दर चली गई। मैंने समझ लिया कि यह ब्याह करानेवाली ब्राह्मणी है और मेरे ही ब्याहकी बातचीत करने आई है।

माने जोरसे पुकारकर कहा, "बेटी, ज़रा धोती बदलकर यहाँ तो आ।"

कपड़े बदलना चूल्हेमें गया, मैं वही गीली धोती पहने दरवाजेकी आड़में खड़ी होकर कान लगाकर सुनने लगी। मेरे कलेजेकी धड़कन मानो किसी तरह रुकना ही नहीं चाहती थी। सुना कि चितोर गाँवमें राधाविनोद मुकर्जीके लड़के हैं घनश्याम।—मेरी इस कम्बख्त तकदीरमें बहुतसे दुख सहने बदे थे, इसीलिए आज जो नाम मेरे लिए जपनेका मन्त्र हो रहा है, उस दिन उसे सुनकर मेरे सारे शरीरमें आग लग गई थी।

सुना कि उसके बाप तो नहीं हैं, पर माँ है। दो छोटे भाई भी हैं जिनमेंसे एकका ब्याह हो गया है और दूसरा अभी पढ़ता ही है। भारी गृहस्थीका सारा बोझ उन्हींके सिर आ पड़ा है, इसलिए उन्हें एण्ट्रेन्स पास करनेके बाद ही पढ़ाई छोड़कर रोजगार-धन्धेमें लग जाना पड़ा। वे धान, चावल, तीसी और पाट आदिकी दलाली करके अच्छा कमा लेते हैं। सारी गृहस्थी उन्हींपर निर्भर करती है। इसके सिवा घरमें नारायणकी मूर्ति है, दो गाएँ हैं और एक विधवा बहन है। सभी कुछ है, नहीं क्या है ?

गृहस्थीमें केवल बड़ी बहू नहीं है। सात बरस पहले ब्याह होनेके बाद एक महीनेके अन्दर ही वह मर गई थी। उसके बाद इतने दिनोंमें यह चेष्टा की गई है। सात बरस ! मैंने मन ही मन कहा—मुँह-जली कहींकी ! क्या इतने

दिनोंतक तू सिर्फ़ मेरा ही सिर खानेके लिए आँखें बन्द किये सोई हुई थी ?

माके कई बार बुलानेपर मैं धोती बदलकर आई। ब्राह्मणीने मुझे बारीकीसे देखकर कहा, "लड़की पसन्द है। अब दिन निश्चित करना भर बाकी रहा।"

मेरी माकी आँखोंमें आँसू भर आये। कहा, "तुम्हारे मुँहमें घी-शक्कर पड़े बहन, और मैं क्या कहूँ!"

मामाने सुनकर कहा, "सिर्फ़ एण्ट्रेन्स पास है तो कहला भेजो कि ज़रा आकर दो बरस हमारी सौदामिनीसे अँगरेज़ी पढ़ जाय, तब ब्याहकी बातचीत की जायगी!"

माने कहा, "भइया, मैं तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ। यह सम्बन्ध मत फेरो। ऐसा अच्छा सुयोग फिर नहीं मिलेगा। कुछ देना-लेना नहीं पड़ेगा—"

मामाने कहा, "तब फिर तो हाथ-पैर बाँधकर गंगामें डुबा आओ। गंगा भी एक पैसा नहीं माँगेगी।"

माने कहा, "पर लड़कीने पन्द्रहवें बरसमें पैर दिया है जो!—"

मामाने कहा, "हाँ, सो तो देगी ही, क्योंकि पन्द्रह बरस तक बची रही है जो!"

मारे क्रोध और दुःखके माका गला भर आया। वे बोलीं, "तो फिर क्यों भइया, क्या तुम इसका ब्याह नहीं करोगे? इसके बाद अब फिर कोई पात्र नहीं मिलनेका!"

मामाने कहा, "लेकिन इस डरसे उसे पहलेसे ही तो पानीमें फेंक नहीं दिया जा सकता!"

माने कहा, "भइया, तुम आप ही एक बार जाकर अपनी आँखोंसे लड़केको देख न आओ। अगर पसन्द न हो, तो न करना सम्बन्ध।"

मामाने कहा, "यह ठीक है। मैं चिट्ठी लिखे देता हूँ कि रविवारको आऊँगा।"

कोई भाँजी न मार दे, इस भयसे माने बात छिपा रखी और मामाको भी सावधान कर दिया। पर वे नहीं जानती थीं कि ऐसी आँखें और कान भी हैं जिन्हें कोई भी सतर्कता धोखा नहीं दे सकती।

अपने बागके जमीनके एक टुकड़ेमें मैंने साग-भाजी बो रखी थी। दो दिन बाद दोपहरके समय मैं एक टूटी हुई खुरपी लिये उसमेंकी घास साफ कर रही थी। पैरोंकी आहटसे मुँह फेरकर देखा तो नरेन्द्र खड़ा है! उसकी उस तरहकी मुखाकृति मैंने बहुत दिन पहले एक बार अवश्य देखी थी; पर उसके

बाद फिर कभी नहीं देखी। मेरे हृदयमें एक ऐसी व्यथा उत्पन्न हुई जैसी पहले कभी नहीं हुई थी। उसने कहा, "क्या तुम सचमुच ही मुझे छोड़कर चलीं?"

बात समझकर भी मैं मानों समझ न सकी, कह बैठी, "कहाँ?"

"चितोर।"

बात स्पष्ट होते ही मारे लज्जाके मेरा सिर नीचा हो गया। कोई उत्तर देते नहीं बना।

उसने फिर कहा, "इसीलिए मैं भी तुमसे बिदा लेने आया हूँ और मैं समझता हूँ कि यह बिदाई शायद जन्म-भरके लिए हो। लेकिन इससे पहले मैं दो बातें कह लेना चाहता हूँ। सुनोगी?"

कहते कहते उसका गला रुँध गया। फिर भी मेरे मुँहसे कोई बात न निकली। मैंने सिर उठाकर देखा: यह क्या? उसकी दोनों आँखोंसे तो झर-झर आँसू बह रहे हैं!

—अरी पतिता! अरी दुर्बला नारी! जब भगवानने तुझे मनुष्यकी आँखोंका जल सहन करनेकी भी शक्ति नहीं दी, तब तू और कर ही क्या सकती थी?

देखते देखते आसुओंसे मेरी छाती भीग गई। नरेन्द्रने मेरे पास आकर अपने दुपट्टेके छोरसे मेरी आँखें पोंछकर और हाथ पकड़कर कहा, "चलो, उस पेड़के नीचे चलकर बैठें—यहाँ कोई देख लेगा।"

मैंने मनमें तो समझ लिया कि यह अनुचित है, बिलकुल अनुचित है। परन्तु तब भी तो उसकी आँखोंके पलक भीगे हुए थे, उस समय भी तो उसका गला रुँधा हुआ था!

बागके एक कोनेमें कँटीले चम्पाका एक कुंज था। उसने मुझे उसी कुंजमें ले-जाकर बैठाया। किसी अज्ञात भयसे मेरा कलेजा धक्-धक् करने लगा। लेकिन वह स्वयं ही मुझसे कुछ दूरीपर जा बैठा और बोला, "मैं तुम्हें इस एकान्त और निर्जर स्थानमें बुला तो लाया हूँ, पर मैं तुम्हें छूऊँगा नहीं। अभी तक तुम मेरी नहीं हुई हो।"

उसकी अन्तिम बात सुनकर मेरी कम्बख्त आँखोंमें फिर आँसू भर आये। आँचलसे आँखें पोंछकर मैं चुपचाप जमीनकी तरफ़ देखती हुई बैठी रही।

इसके बाद और भी बहुत-सी बातें हुईं। पर उन सबको जाने दो। आज

मी मैं प्रत्येक दिनकी छोटीसे छोटी घटना याद कर सकती हूँ, और यह भी भरोसा नहीं कि मरनेके समय तक भी भूल सकूँगी, पर एक कारण है जिससे मैं अपनी इतनी अधिक दुर्दशा हो जानेपर भी कभी इसके लिए भगवानको दोष न दे सकी। मुझे खूब अच्छी तरह याद है कि मेरे चित्तके द्वारा नरेन्द्रका यह प्रवेश उन्होंने किसी भी दिन प्रसन्नतासे ग्रहण नहीं किया। यह उनके अगोचर नहीं था कि वह मेरे जीवनका एक बड़ा भारी झूठ था और इसीलिए नरेन्द्रके प्रणय-निवेदनके समयकी क्षणिक उत्तेजना तुरन्त ही कितने बड़े अवसादमें डूब जाती थी, इसे मैं भूल नहीं सकी हूँ : मुझे मालूम होता था कि मानों मैं कोई बहुत बड़ी चोरी करके, डाका डालकर या किसीका सर्वनाश करके घर लौट आई हूँ। लेकिन मेरा दुर्भाग्य, कि अन्तर्यामीके इतने बड़े संकेतपर भी मुझे होश नहीं हुआ। होता भी कैसे? किसीसे यह तो सीखा ही न था कि भगवान् मनुष्यके हृदयमें निवास भी करते हैं और यह उन्हींका निषेध है।

मामा पात्र देखनेके लिए रवाना हुए। जाते समय वे तरह-तरहसे हँसी मज़ाक़ करते गये। मा चुपचाप उदास होकर खड़ी रहीं, और मन ही मन समझ गईं कि यह जाना व्यर्थका श्रम है, पात्र उन्हें पसन्द आनेका ही नहीं। परन्तु आश्चर्य, वापस आनेपर उन्होंने ऐसा कुछ अधिक हँसी-मज़ाक़ नहीं किया और कहा, "हाँ, लड़केने कुछ पास-वास तो नहीं किया है, पर मूर्ख भी नहीं जान पड़ा और सिवा इसके वह बहुत नम्र और बहुत विनयी है। एक बात और है गिरि, उस लड़केके चेहरेमें कुछ ऐसा भाव है कि जी चाहता है और भी कुछ देर तक उसके पास बैठकर बातें करते रहें।"

मारे प्रसन्नताके माका चेहरा चमकने लगा। वे बोलीं, "तब तो और कोई आपत्ति मत करो भइया, अपनी अनुमति दे दो जिससे सदू पार लग जाय।"

मामाने कहा, "अच्छा, ज़रा सोच लूँ।"

मैं आड़में खड़ी हुई केवल निराशाकी आशाको छातीसे चिपकाये हुए मन ही मन बोली : चलो, यही अच्छा है कि मामा अभीतक कोई निश्चय नहीं कर पाये हैं। अब भी कुछ कहा नहीं जा सकता। पर कौन जानता था कि भानजीके ब्याहके सम्बन्धमें मति स्थिर करनेके पहले ही स्वयं अपने सम्बन्धमें मति स्थिर करनेके लिए उनकी बुलाहट आ जायगी। जिसके अस्तित्वके सम्बन्धमें

जन्म भर सन्देह करते रहे उस दिन अत्यन्त अकस्मात् जब उसीका दूत आकर उनके सिरहाने खड़ा हो गया, तब वे चौंक पड़े। उनकी बातें सुनकर हम लोग भी कुछ कम नहीं चौंके। वे माको अपने पास बुलाकर बोले, "बहन, मैं तुम्हें अपनी अनुमति दिये जाता हूँ, तुम सौदामिनीका ब्याह वहीं कर देना। लड़केका भगवानपर वास्तविक विश्वास है। लड़की सुखसे रहेगी।"

यह तो अवाक् कर देनेवाली अद्भुत बात हो गई! पर मेरी मा अवाक् नहीं हुईं। नास्तिकता उन्हें फूटी आँखों न सुहाती थी। उनका विश्वास था कि मरनेके समय सभी लोग घूम-फिरकर ईश्वरका स्मरण करते हैं। इसीलिए वह प्रायः कहा करती थीं, "शराबी मित्रपर कोई चाहे कितना ही अधिक प्रेम क्यों न करे, पर जब किसीके ऊपर निर्भर करनेका अवसर आता है तब वह भरोसा करता है केवल उसीपर जो शराब नहीं पीता।" कह नहीं सकती कि यह बात कहाँ तक ठीक है।

हृद्रोगसे मामाका देहान्त हो गया और हम लोग एक असीम समुद्रमें जा पड़े। सुख-दुःखसे कुछ दिन बीत तो गये, पर जिस घरमें अविवाहिता लड़कीकी अवस्था पन्द्रह बरस पार कर चुकी हो उस घरमें केवल अलस-भावसे शोक करनेका सुभीता नहीं रह जाता। मा आँसू पोंछकर उठ बैठीं और फिर कमर कसने लगीं। अन्तमें बहुत दिनोंमें, बहुत-सी बात-चीत और झगड़ेके बाद जब विवाहका मुहूर्त सचमुच ही मेरे कलेजेमें आकर छिद गया तब मेरी उम्र सोलहके पार हो गई थी। उस समय भी मेरा क़द प्रायः इतना ही था। क़दकी इस दीर्घताके कारण मेरी माताकी लज्जा और कुण्ठाकी सीमा नहीं थी। वह प्रायः क्रोधमें आकर मुझे डाँटती हुई कहती थीं, 'इस कम्बख्त लड़कीकी सभी बातें दुनियासे निराली हैं!' एक तो ब्याही जानेवाली लड़कीके पक्षमें सत्रह वर्षका हो जाना यों ही भीषण अपराध है तिसपर इस क़दके कारण वह मानो और भी बढ़ गया था। यदि कमसे कम ब्याहवाली रातके लिए भी मा मुझे किसी तरह तोड़-मरोड़कर कुछ छोटा कर सकतीं तो शायद इसके लिए भी वे अपनी तरफसे पीछे न हटतीं! पर वह तो हो ही नहीं सकता था। मैं अपने स्वामीके वक्षःस्थलको पार करके ठीक उनकी ठोढ़ी तक जा पहुँची! परन्तु फिर भी शुभ दृष्टि नहीं हुई। —मैं बिल्कुल नाराज़ीसे नहीं, बल्कि मानो एक तरहकी वितृष्णासे उस समय अपनी आँखें बन्द किये रही। पर साथ ही मैं यह भी कह देना चाहती हूँ कि उन

दिनों में बहुत दिनोंतक रात-रात जाग-जागकर सोचा करती थी कि यदि कहीं सचमुच ही ऐसी दुर्घटना सिरपर आ पड़ेगी और नरेन्द्र आकर मुझे न ले जायगा, तो भी और किसीके साथ तो मेरा ब्याह किसी तरह हो ही न सकेगा। यह विश्वास मेरे मनमें पूरी तरहसे जड़ पकड़ गया था कि निश्चय ही उस रातको मेरा कलेजा फट जायगा, ढेरका ढेर रक्त मेरे मुँहके रास्तेसे निकल पड़ेगा और तब मुझे विवाह-मंडपसे उठाकर बिछौनेपर ले जाना पड़ेगा। लेकिन कहाँ, कुछ भी तो नहीं हुआ! जिस प्रकार और भले आदमियोंकी लड़कियोंके होते हैं, उसी प्रकार मेरे भी सब शुभ कृत्य हो गये और मैं भी उसी तरह एक दिन अपनी ससुरालके लिए चल दी।

घरसे चलते समय पालकीकी दरजमेंसे वह कँटीले चम्पाका कुंज मुझे दिखाई पड़ गया। उसे देखकर मेरी आँखोंमें आँसू भर आये। वह हम लोगोंके बहुत दिनोंके, बहुतेरे आँसुओं, कसमों और दम-दिलासोंका नीरव साक्षी था। जिस दिन चितोरमें मेरा सम्बन्ध पक्का हुआ था उस दिन उन वृक्षोंकी आड़में बैठकर बहुत-कुछ अश्रु-विनिमयके उपरान्त यह स्थिर हुआ था कि वह किसी दिन आकर मुझे ले जायगा।—परन्तु कहाँसे, क्यों, कैसे, आदि व्यर्थ प्रश्नोंकी उस समय आवश्यकता ही नहीं हुई थी!

—और कुछ नहीं, यदि केवल चलनेके समय उससे एक बार भेंट हो जाती! —क्यों फिर उसने मुझे देखा नहीं, क्यों फिर एक दिन भी आकर उसने मुझसे भेंट नहीं की!—यदि इस समय केवल उसकी खबर ही पा सकती!

ससुराल पहुँच गई और वहाँ ब्याहकी बाकी रस्में भी पूरी हो गईं। अर्थात् अब मैं अपने स्वामीकी धर्म-पत्नीके पदपर पक्की तरहसे बैठ गई।

मैंने देखा कि स्वामीके प्रति अरुचि केवल मेरे ही मनमें नहीं है, घर-भरके सभी मेरे दलमें हैं। ससुर तो थे ही नहीं,—हाँ सौतेली सास थीं। स्वयं उनके दो लड़के थे, एक बहू और एक विधवा लड़की भी थी और हरदम वे उन्हींके लिए व्यस्त रहती थीं। इतने दिन मजेसे वे अपने गृहस्थी चला रही थीं कि अचानक एक सत्रह-अठारह बरसकी खूब बड़ी बहूको घरमें आई हुई देखकर उनका समस्त मन मानों सशस्त्र होकर जाग पड़ा; पर मुँहसे बोलीं, "बहू, तुम क्या आ गईं, मेरी तो जान बच गई। तुम्हारे ऊपर गृहस्थीका सारा भार छोड़कर और निश्चिन्त होकर अब मैं घड़ी दो घड़ी ईश्वरका ध्यान तो कर सकूँगी। घनश्याम मेरे पेटके लड़कोंसे भी बढ़कर है, वह जीता रहे तो सब कुछ सुरक्षित रहेगा

बेटी, यही समझकर सब काम किया करो। मैं और कुछ नहीं चाहती। इस तरह उन्होंने अपना काम किया, और मैंने भी अपना काम कर दिया: कह दिया "अच्छा।" लेकिन ये सब बातें कुश्तीके लिए पहलवानोंके ताल ठोंकनेके समान थीं। इशारेसे बतला दिया गया कि कुश्तीके दाँव-पेंच दोनों ही जानती हैं!

स्त्रियाँ स्त्रियोंको कितनी जल्दी पहचान लेती हैं, यह एक आश्चर्यजनक बात है। उनको पहचाननेमें जिस प्रकार मुझे देर न लगी, उसी प्रकार दो-चार दिनके अन्दर ही मुझे पहचानकर उन्होंने भी आरामकी साँस ली। उन्होंने अच्छी तरह समझ लिया कि अपने स्वामीके खाने पहनने, उठने-बैठने और हिसाब-किताबके लिए दिन रात चिन्ता करते-फिरनेका न तो इसे उत्साह ही है और न प्रवृत्ति ही।

स्त्रियोंके तरकशमें जितने प्रकारके दिव्यास्त्र होते हैं उनमें सबसे बड़ा ब्रह्मास्त्र है आड़में रहकर दूसरोंकी बातें सुनना। अवसर पाकर इसमें माँ-बेटी, सास बहू, ननद भौजाई,—कोई किसीका मुलाहिजा नहीं करतीं। मुझे अच्छी तरह मालूम है कि यह सु-संवाद मेरी साससे छिपा नहीं रहा कि मैं पलंगपर नहीं सोती, कमरेमें जमीनपर एक चटाई बिछाकर सारी रात उसीपर पड़ी रहती हूँ। पहले मैं सोचा करती थी कि यदि नरेन्द्रको छोड़कर और किसीके साथ मुझे पत्नी-रूपमें रहना पड़ेगा तो मेरी छाती फट जायगी, पर अब मुझे मालूम हुआ कि वह भूल थी। उसके फटने या चिरनेका तो कोई भी लक्षण न दिखाई दिया, फिर भी, एक शय्यापर सोनेकी भी किसी प्रकार मेरी प्रवृत्ति नहीं हुई।

देखा कि मेरे स्वामी भी एक अद्भुत प्रकृतिके आदमी हैं। कुछ दिनों तक तो उन्होंने मेरे आचरण और व्यवहारके सम्बन्धमें कोई बात ही नहीं कही। साथ ही यह बात भी नहीं थी कि मन ही मन मुझपर वे कुछ क्रोधित हों या रूठ गये हों। सिर्फ़ एक दिन ज़रा हँसकर उन्होंने कहा, "क्या कमरेमें एक खाट लाकर ज़रा बड़ा बिछौना करके नहीं सो सकतीं?"

मैंने कहा, "ज़रूरत ही क्या है! मुझे तो इसमें कोई कष्ट नहीं होता।"

उन्होंने कहा, "कष्ट न हो, फिर भी इससे तबीयत खराब हो सकती है।"

मैंने कहा, "यदि इतना डर है तो क्या तुम मेरे सोनेकी व्यवस्था किसी दूसरे कमरेमें नहीं कर सकते!"

उन्होंने कहा, "छीः, ऐसा कहीं हो सकता है ? इससे न जाने कितने तरहकी अप्रिय आलोचनाएँ होने लगेंगी।"

मैंने कहा, "हों तो हुआ करें, मैं परवाह नहीं करती।"

कुछ देर चुप रहकर मेरे मुँहकी ओर देखते हुए उन्होंने कहा, "भला ऐसी कौन-सी बात है जिसके कारण तुम्हारी छातीपर इतना बड़ा पट्टा सदा ही बँधा रहेगा ?"

इतना कहकर और ज़रा-सा मुस्कराकर वे कामपर चले गये।

मेरे मँझले देवर कहीं चालीस रुपयेकी नौकरी करते थे, पर घर-गृहस्थीके खर्चके लिए कभी एक पैसा भी नहीं देते थे। लेकिन फिर भी, उनके आफिसके समय खाने-पीनेकी सामग्री तैयार करने, आफिससे लौटनेपर हाथ मुँह धोनेके लिए लोटा और अँगोछा रखने और जल पान और पान-तमाखूकी व्यवस्था करनेमें घर-भरके लोग परेशान रहते थे। देखती कि जब कभी मेरे स्वामी और मँझले देवर शामको साथ ही साथ घर आते, तब भी लोग मेरे देवरकी ही खातिर परेशान रहते। यहाँतक कि नौकर भी सिर्फ़ उन्हींको प्रसन्न करनेके लिए चारों तरफ दौड़ा-दौड़ा फिरता। मानो उनके काममें पल-भरकी भी देर होगी या उन्हें किसी बातका ज़रा-सा भी कष्ट होगा, तो सारी पृथ्वी रसातलको चली जायगी! परन्तु, मेरे स्वामीकी ओर कोई आँख उठाकर भी नहीं देखता था। आध आध घण्टेतक सिर्फ़ एक लोटे पानीके लिए ही उन्हें खड़े रहना पड़ जाता था। कोई उस तरफ ध्यान तक नहीं देता था। फिर भी, इन्हीं सब लोगोंके खिलाने-पिलाने और सुख-सुभीतोंके लिए वे दिन-रात मेहनत करके मरते थे। ताँगेमें जोता जानेवाला घोड़ा भी कभी कभी विद्रोह कर बैठता है, पर वे जैसे कभी थकते ही न थे और न किसी प्रकारका दुःख ही उन्हें पीड़ा दे सकता था। इतना शान्त, इतना धीर और इतना घोर परिश्रमी आदमी मैंने पहले कभी अपनी आँखोंसे नहीं देखा था। और क्योंकि मैंने स्वयं अपनी आँखोंसे देखा है, इसीलिए यह लिख रही हूँ, नहीं तो सिर्फ़ सुनी-सुनाई बात होती तो मैं विश्वास भी नहीं कर पाती कि संसारमें ऐसा भला आदमी भी कोई हो सकता है। मुँहपर हँसी बनी ही रहती थी। हर बातमें यही कहा करते, 'बस बस, रहने दो, मेरा काम इतनेसे ही चल जायगा।' स्वामीके प्रति मुझे कोई ममता नहीं थी, बल्कि वितृष्णा और

अरुचि ही थी, फिर भी ऐसे एक निरीह आदमीपर घर-भरके इतने अधिक अन्याय और अवहेलासे मेरा सारा शरीर मानो जला जाने लगा।

घरमें गायोंका दूध कुछ कम नहीं होता था, पर उनके हिस्से किसी दिन थोड़ा-सा आता था और किसी दिन वह भी नहीं। जब यह नहीं सहा गया तो हठात् एक दिन मैंने कुछ कह डालना चाहा, लेकिन तत्काल ही मनमें सोचा—छी, छी, यदि कह डाला होता तो ये लोग मुझे कितना निर्लज्ज समझते!—और फिर ये लोग उनके अपने होनेपर भी यदि दया-ममता नहीं दिखलाते, तो फिर मुझे ही इनके लिए इतनी सिरदर्दीकी क्या ज़रूरत है? मैं कहाँकी और कौन हूँ?—पराई ही तो हूँ!

पाँच-छः दिन बाद एक रोज सबेरे मैं रसोई-घरमें मँझले देवरके लिए चाय तैयार कर रही थी कि मुझे अपने स्वामीका कंठ-स्वर सुनाई पड़ा। उस दिन उन्हें सबेरे ही कहीं बाहर जाना था और देरसे लौटना था। वे कह रहे थे, "माँ, अगर मैं कुछ खाकर जाता तो अच्छा होता, कुछ खाने-पीनेको है?"

माँने कहा, "कैसी बात करते हो घनश्याम, इतने सबेरे खानेको कहाँ रक्खा है!"

स्वामीने कहा, "तो रहने दो, लौटकर ही खा लूँगा।" इतना कहकर वे चले गये।

उस दिन मैं किसी तरह भी अपने आपको न सँभाल सकी। मैं जानती थी कि महल्लेके बोस-परिवारने अपने समधीके यहाँसे आये हुए रसगुल्ले महल्ले-भरमें बाँटे हैं और कल रात हमारे यहाँ भी उन्होंने भेजे हैं। सासके भीतर आते ही मैं पूछ बैठी, "कलके रसगुल्लोंमेंसे कुछ भी नहीं बचे?"

आकाशसे वे मानों एकदम धरतीपर गिर पड़ीं: बोलीं, "भला रसगुल्ले कौन खरीदकर लाया था बहू?"

मैंने कहा, "और जो कल बोसोंके यहाँसे आये थे?"

वे बोलीं, "अरे, वह थे ही कितने जो आज सबेरे तक बचे रहते? वे तो कल ही खत्म हो गये थे!"

मैंने कहा, "तो क्या घरमें ही कुछ तैयार नहीं किया जा सकता था?"

बोलीं, "किया क्यों नहीं जा सकता था बहू! तुमने ही कर दिया होता? तुम भी तो आखिर बैठी बैठी सब देख रहीं थीं बेटी।"

उस समय मैं चुप रह गई। इसके आगे और मैं कहती ही क्या? अपने स्वामीके प्रति मेरे अनुरागकी बात घरमें किसीसे छिपी तो थी ही नहीं!

उस समय चुप तो मैं ज़रूर रह गई, पर अन्दर ही अन्दर मेरा मन जलने लगा। दोपहरको सासने पुकारकर कहा, "आओ बहू, खा लो। थाली परोस दी है।"

मैंने कहा, "मैं अभी नहीं खाऊँगी। तुम लोग खा लो।"

मेरे मनमें जो भाव उत्पन्न हुआ था उसे सासने लक्ष्य कर लिया था, इसलिए पूछा, "क्यों नहीं? ज़रा बताओ तो सही!"

मैंने कहा, "अभी भूख नहीं है।"

मँझली देवरानी मुझसे कोई चार बरस बड़ी थीं। रसोई घरमेंसे ही वे तानेके तौरपर बोलीं, "जब तक जेठजी खा न लेंगे, तब तक शायद बहनको भूख न लगेगी माँ!"

सासने कहा, "यही बात है न बहू! भला, यह नया ढंग तुमने कबसे सीखा?"

सासने कुछ गलत नहीं कहा था। मेरे लिए यह ढंग ही तो था! तो भी मैं इस व्यङ्गको सह न सकी। बोली, "इसमें नई बात कौन-सी है माँ? तुम लोगोंके समयमें क्या इसका पालन नहीं होता था? बाबूजीके खानेसे पहले ही क्या तुम खा लिया करती थीं?"

"चलो, यह अच्छा ही हुआ। इतने दिनों बाद ही सही, आखिर घनश्यामकी तकदीर खुली तो!"

यह कहकर सासने मुँह बना लिया और वे रसोई-घरमें चली गईं।

इतनेमें मँझली देवरानीकी आवाज़ सुनाई पड़ी। मुझे सुनानेके लिए ही वह बोली "तभी तो मैंने कह दिया था माँ, कि बुड्ढा तोता राम राम नहीं पढ़ेगा।"

मैं क्रोधित होकर अपने कमरेमें आकर सो तो गई, पर फिर भी जब मैंने मन ही मन सब बातोंकी आलोचना की, तो मारे लज्जाके मानों मैं कटी जाने लगी। बार बार इसी बातका ध्यान आने लगा कि उन्होंने नहीं खाया, इसीलिए मैंने भी नहीं खाया और उन्हींके लिए मैंने झगड़ा किया! यदि ये सब बातें उनके कानों तक गईं?—छीः छीः, भला वे अपने मनमें क्या सोचेंगे! इतने दिनोंके आचरणके साथ मेरा आजका व्यवहार इतना निराला और बेजोड़ था कि मैं मारे लज्जाके मरी जाने लगी। पर खैरियत यही हुई कि वे लौटकर आये तो किसीने ये बातें उनसे कहीं नहीं।

सचमुच ही बड़ी खैरियत हुई, इसमें रत्ती-भर भी झूठ नहीं है। पर अच्छा, यदि मैं एक बात कहूँ, तो क्या तुम लोग उसपर विश्वास कर सकोगे? यदि कहूँ कि उस रातको जब थके-माँदे स्वामी पलंगपर सोये हुए थे और मैं नीचे जमीनपर लेटी हुई थी, तब, जब-तक मुझे नींद नहीं आई, रह-रहकर मेरे मनमें यही साध जगने लगी कि कोई उनके कानोंतक पहुँचा दे कि स्वामीके भोजन न करनेके कारण मैंने भी कुछ नहीं खाया और इसके लिए मैंने झगड़ा भी किया;—चुपचाप यह अन्याय सह नहीं लिया—तो इस बातपर तुम्हें विश्वास होगा? यदि न होगा तो मैं इसके लिए तुम्हें दोष न दूँगी और यदि होगा तो इसे मैं अपना बड़ा भाग्य समझूँगी और आज जब कि समस्त ब्रह्मांडमें स्वामीसे बढ़कर मेरे लिए और कोई नहीं है, तब उन्हींका नाम लेकर मैं कहती हूँ कि उसी दिन पहले-पहल मैंने आभास पाया कि मनुष्यके मन नामक पदार्थका कोई अन्त नहीं है। इतनी बड़ी पापिष्ठाके मनमें भी इस प्रकारकी दो उलटी धाराओंके एक साथ बहनेके लिए स्थान हो सकता है, यह देखकर मैं अवाक् हो गई!

मन ही मन कहने लगी कि यह बड़ी लज्जाकी बात है, नहीं तो मैं स्वयं नींदमेंसे जगाकर उनसे कहती कि केवल संसारमें सृष्टि-विरुद्ध भले आदमी होनेसे ही काम नहीं चलता; साथमें यह सीखनेकी भी आवश्यकता है कि कर्त्तव्य-पालन किस प्रकार करना चाहिए। जिस स्त्रीकी तुम ज़रा भी परवा नहीं करते, एक बार आँखें खोलकर देखो कि उसने तुम्हारे लिए क्या किया है?—हाय रे फूटी किस्मत! जुगनू चाहती है सूर्यदेवको प्रकाश दिखलाकर मार्ग बतलाना! इसीलिए कहती हूँ कि हे भगवन्, क्या तुमने इस अभागिनीके दर्पका आदि और अन्त बनाया ही नहीं?

न जाने गर्मीसे अथवा किसी कारणसे कई दिनतक मेरे सिरमें दर्द बना रहा। चार-पाँच दिन बादकी बात है कि रातको बहुत देरतक छटपटानेके उपरान्त किसी प्रकार मुझे कुछ नींद आ गई थी। निद्रामें ही मुझे कुछ ऐसा जान पड़ा कि कोई पास बैठा हुआ धीरे धीरे पंखा झल रहा है। एक बार पंखा खटसे मेरे शरीरके साथ आ लगा और मेरी नींद खुल गई। कमरेमें रोशनी हो रही थी। आँख खोलकर देखा कि स्वामी बैठे पंखा झल रहे हैं।

रातके समय वे स्वयं तो जाग रहे थे और पंखा झलकर मुझे सुला रहे थे! मैंने उनके हाथसे पंखा ले लिया और कहा, "यह क्या कर रहे हो?"

उन्होंने कहा, "बात मत करो, चुपचाप सो जाओ। अगर जागती रहोगी तो सिरका दर्द दूर न होगा।"

मैंने पूछा, "तुमसे किसने कहा कि मेरे सिरमें दर्द है ?"

उन्होंने कुछ हँसकर उत्तर दिया, "किसीने नहीं कहा। मैं ज्योतिषी जो हूँ। जब किसीके सिरमें दर्द होता है, तब मुझे पता चल जाता है।"

मैंने पूछा, "तब तो तुम्हें और दिन भी पता चला होगा ? मेरे सिरमें कुछ आज ही तो दर्द हुआ नहीं है !"

उन्होंने कुछ हँसकर कहा, "मुझे रोज ही पता चल जाता है। पर अब क्या तुम सोओगी नहीं, बातें ही करोगी ?"

मैंने कहा, "मेरे सिरका दर्द अच्छा हो गया है। अब नहीं सोऊँगी।"

उन्होंने कहा, "अच्छा ठहरो। तुम्हारे सिरमें दवा लगा दूँ।"

इतना कहकर वे उठे, जाकर कोई दवा ले आये और धीरे-धीरे सिरपर मलने लगे। मैंने जान-बूझकर तो कुछ नहीं किया, पर मेरा दाहिना हाथ न जाने किस तरह उनकी गोदमें जा पड़ा और उन्होंने एक हाथसे उसे पकड़कर दबा रखा। शायद मैंने एक बार कुछ ज़ोर भी किया, पर न जाने वह ज़ोर कहाँ चला गया ! जब किसी लड़केको उसकी माँ जबरदस्ती खींचकर अपनी गोदमें लेटा लेती है, तब बाहरसे देखनेपर वह एक अत्याचार-सा मालूम होता है, पर उस अत्याचारके मध्यमें भी लड़केके सो जानेमें कुछ अड़चन नहीं आती।

बाहरवाले चाहे जो कहें, पर बच्चा समझता है कि मेरे लिए यही सबसे बढ़कर निरापद स्थान है। समझती हूँ कि शायद मेरे इस जडपिण्ड हाथको भी इसी प्रकारका कुछ ज्ञान था, नहीं तो फिर इतनी अच्छी तरहसे उसे कैसे मालूम हो गया कि निश्चिन्त और निर्भर होकर पड़े रहनेके लिए उसके लिए ऐसा अच्छा आश्रय और नहीं है।

इसके बाद वे धीरे धीरे मस्तकपर हाथ फेरने लगे और मैं चुपचाप पड़ी रही। इससे अधिक मैं और कुछ न कहूँगी कि मेरी वह प्रथम रात्रिकी आनन्दपूर्ण स्मृति मेरी और केवल मेरी ही बनी रहे।

मैं तो समझती थी कि प्रेमके सम्बन्धमें जितनी बातें हैं वे सब सीखकर और समाप्त करके ही मैं ससुराल आई हूँ, किन्तु, यदि मुझे उस दिन पता चल जाता कि वह सीखना सूखी जमीनपर हाथ-पैर पटककर तैरना सीखनेके

समान ही गलत सीखना था, तो कितना अच्छा होता! उस दिन मेरा वह हाथ स्वामीकी गोदमेंसे अपने सर्वांग द्वारा खींचकर यही बात मेरे हृदयके भीतर प्रविष्ट करनेका प्रयत्न कर रहा था। यदि यह बात उस दिन ही मेरे सामने स्पष्ट हो जाती!

सवेरे सोकर उठी, तो देखा, स्वामी कमरेमें नहीं हैं, न जाने कब उठकर चले गये हैं। अचानक ध्यान आया कि कहीं रातको स्वप्न तो नहीं देखा था, लेकिन मैंने देखा कि वह दवाकी शीशी अभी तक मेरे सिरहाने पड़ी है। उस समय न जाने क्या मनमें आया कि मैंने वह शीशी उठाकर कई बार अपने मस्तकसे लगाई और तब उसे ताकपर रखकर बाहर चली आई।

इसका मुझे पता चल गया था कि सास उसी दिनसे मुझपर कड़ी नजर रखने लगी हैं। मैंने भी सोचा कि भाड़में जायँ, अब मैं किसी बातमें न पड़ूँगी। इसके सिवा आये चार दिन भी नहीं हुए और स्वामीके खाने-पहननेके बारेमें झगड़ा करना शुरू कर दिया!—छी-छी, लोग यह सुनेंगे तो क्या कहेंगे?

परन्तु इस बीचमें कब मेरे मनपर उनकी छाप पड़ गई और कब मैं उनके खाने-पहननेके सम्बन्धमें अन्दर ही अन्दर उत्सुक हो उठी, यह मैं स्वयं ही नहीं जानती। इसीलिए दो दिन जाते न जाते एक दिन मैं फिर झगड़ बैठी।

मेरे स्वामीके किसी आढ़तिये मित्रने उस दिन सवेरे ही एक रोहू मछली भेज दी थी। तालाबको नहाने जा रही थी कि मैंने देखा घरके सब लोग बरामदेमें जमा होकर बात-चीत कर रहे हैं। मैं भी पासमें जा खड़ी हुई। मछली काटी जा चुकी थी। मँझली देवरानी तरकारी बना रही थीं और सास रसोई-दारिनको दे-देकर कह रही थीं, 'यह रसेदार मछलीमें पड़ेगी, यह सूखी मछलीमें पड़ेगी, यह खट्टेवाली मछलीमें पड़ेगी।' इस प्रकार आमिष भोजनकी सभी व्यवस्था हो रही थी। आज एकादशी है, इसलिए आज उनके और विधवा लड़कीके भोजनका झगड़ा नहीं है, किन्तु स्वामीके खानेके लिए वहाँ कोई व्यवस्था मुझे न दिखाई दी। वे वैष्णव थे, ज़रा-सी दाल, एक-दो तरकारी और चटनीसे उनका काम चल जाता था। फिर भी अच्छा भोजन उन्हें प्रिय लगता था। मैं देख चुकी थी कि किसी दिन कोई बढ़िया तरकारी बन जाती थी तो उनकी प्रसन्नताकी सीमा नहीं रहती थी।

मैंने पूछा, "उनके लिए क्या हो रहा है माँ?"

सासने कहा, “ आज और समय ही कहाँ है बहू ! उसके लिए भातके साथ थोड़ेसे आलू और करेले देनेके लिए कह दिया है,—ऊपरसे थोड़ा-सा दूध भी।”

पूछा, “ समय क्यों नहीं है माँ ? ”

सासने कुछ चिढ़कर कहा, “ तुम देख ही तो रही हो बहू, इतनी तरहकी मछली बनानेमें ही तो दस-ग्यारह बज जायँगे। आज अखिलके (छोटे देवरके) दो-चार दोस्त खाने आवेंगे। वे लोग ठहरे सब अफसर। अगर दस बजे तक खा नहीं लेंगे तो उनका पित्त चढ़ आयगा, फिर सारे दिन खा ही न सकेंगे। इसपर अगर निरामिष चीज़ें भी और बनेंगी, तो राँधनेवालीकी क्या दशा होगी ? बेटी, उसकी जानका भी तो ख्याल रखना चाहिए ! ”

मारे क्रोधके मेरा सारा शरीर जलने लगा, तो भी किसी तरह आत्म-संरक्षण करके मैंने कहा, “ लेकिन भातके साथ सिर्फ़ आलू और करेला कैसे कोई खा सकेगा माँ ! क्या जरा-सी दाल बनानेको भी समय नहीं मिल सकता ! ”

सासने मेरी तरफ कुछ कठोरतासे देखकर कहा, “ तुम्हारे साथ तर्क नहीं कर सकती बेटी, मुझे और भी काम हैं। ”

अब तक तो क्रोध सँभाले हुए थी, पर अब और न सँभला। कह बैठी, “ काम तो सभीको है माँ। वे तीस रुपयेकी मुन्शीगीरी नहीं करते, इसलिए तुम कुली-मज़दूर समझकर उनकी उपेक्षा कर सकती हो; पर मैं तो नहीं कर सकती। मैं केवल आलू करेलेके साथ उन्हें न खाने दूँगी। अगर मिसरानी नहीं बना सकती, तो मैं जाती हूँ। ”

सास कुछ देर तक अवाक् रहकर मेरी ओर देखती रहीं और फिर बोलीं, “ तुम तो अभी कल ही आई हो बहू, पर जानती हो कि इतने दिनों तक उसे कौन खिलाता-पिलाता रहा है ? ”

मैंने कहा, “ कौन खिलाता-पिलाता रहा है, यह जाननेकी मुझे ज़रूरत नहीं। और कलकी आई होनेपर भी मैं नादान बच्ची नहीं हूँ माँ। अबसे मैं यह सब नहीं होने दूँगी। ”

इसके बाद रसोई-घरमें जाकर मैंने मिसरानीसे कहा, “ बड़े बाबूके लिए निरामिष भोजन,—दाल, तरकारी और चटनी बनेगी। अगर तुमसे न हो सके तो एक चूल्हा मेरे लिए अलग छोड़ दो। मैं आकर बनाती हूँ। ”

इतना कहकर उत्तर-प्रत्युत्तर आदिकी अपेक्षा किये बिना ही मैं स्नान करने चली गई।

स्वामीका बिछौना मैं स्वयं अपने हाथसे ही बिछाया करती थी। उस साफ और झक्क बिछौनेके ऊपर अन्दर ही अन्दर मुझे जो लोभ हो गया था, हठात् इतने दिनों बाद बिछौना करते समय जब उसका ज्ञान हुआ तो मैं अपने आप ही मानो मारे लज्जाके मर-सी गई।

घड़ीमें बारह बजते ही वे सोनेके लिए आये। मैं क्यों इतनी रात तक बैठी हुई किताब पढ़ती रही, आज उनके पैरोंकी आहटने यह बात इतने स्पष्ट रूपसे मेरे कानोंमें कह दी कि मैं मारे लज्जाके सिर उठाकर ऊपरकी तरफ देख ही न सकी।

स्वामीने कहा, "अभी तक सोई नहीं ?"

किताबकी तरफसे आँखें हटाकर घड़ीकी तरफ देखकर मैं जैसे चौंक पड़ी। —ऐं! सचमुच ही तो बारह बज गये हैं!

लेकिन भगवान् यदि सब कुछ देख सकते हैं, तो वे यह भी देख रहे थे कि उनके आनेके पहले मैं पाँच-पाँच मिनट पर घड़ी देख रही थी!

स्वामीने शय्यापर बैठकर कुछ मुस्कराते हुए कहा, "यह और क्या झगड़ा खड़ा किया था ?"

मैंने पूछा, "किसने कहा ?"

वे बोले, "मैं तो उसी दिन तुमसे कह चुका हूँ कि मैं ज्योतिषी हूँ, इस लिए बिना किसीके कहे ही सब जान जाता हूँ।"

मैंने कहा, "जान लिया, तो अच्छा किया। किन्तु चाहे उस खबर देनेवाले जासूसका नाम न बतलाओ, पर यह तो बतला दो कि मेरे क्या क्या दोष उसने बतलाये ?"

उन्होंने कहा, "जासूसने तो दोष नहीं बतलाये, पर मैं बतलाता हूँ।— अच्छा, मैं एक बात पूछता हूँ। तुम्हें इतनी ज़रा-सी बातपर इतना गुस्सा क्यों आ जाता है ?"

मैंने कहा, "ज़रा-सी बात थी ? क्या तुम यह समझते हो कि न्याय-अन्यायको तुम्हारे ही बाँटोंसे सब लोग तौला करेंगे ? किन्तु मैं कहती हूँ तुम भी जो गुस्सा न करनेको कह रहे हो, यदि स्वयं अपनी आँखोंसे यह अत्याचार देखते तो गुस्सा हुए बिना न रहते।"

वे फिर कुछ हँसे और बोले, "हम वैष्णव हैं। अपने ऊपर अत्याचार

होता देखकर हमें गुस्सा नहीं करना चाहिए। महाप्रभु कह गये हैं कि हम लोगोंको वृक्षोंकी तरह सहनशील होना चाहिए। और आगेसे तुम्हें भी ऐसा ही सहनशील होना पड़ेगा।"

"क्यों, मेरा क्या अपराध है?"

"तुम्हारा अपराध यही है कि तुम एक वैष्णवकी स्त्री हो।"

"हाँ, यह हो सकता है, परन्तु वृक्षोंकी तरह अन्याय सहन करना मेरा काम नहीं है, फिर वह चाहे किसी भी प्रभुका आदेश हो। और फिर जो आदमी भगवान् तकको न मानता हो, उसके लिए महाप्रभु कौन होते हैं?"

स्वामी सहसा मानो चौंक पड़े, बोले, "भगवानको कौन नहीं मानता! तुम!"

मैंने कहा, "हाँ, मैं।"

उन्होंने पूछा, "तुम भगवानको क्यों नहीं मानतीं?"

मैंने कहा, "हैं नहीं, इसलिए नहीं मानती। मिथ्या हैं, इसीलिए नहीं मानती।"

मैं बहुत ध्यानपूर्वक देख रही थी कि स्वामीका हँसमुख चेहरा धीरे धीरे म्लान होता जा रहा है और इस बातके बाद तो वह राखके समान सफेद हो गया। कुछ देर तक चुप रहनेके बाद उन्होंने कहा, "सुना है कि तुम्हारे मामा अपने आपको नास्तिक कहते थे—"

मैंने बीचमें ही उनकी भूल बतलाते हुए कहा, "नहीं, वे अपने आपको नास्तिक नहीं, बल्कि अग्नॉस्टिक कहते थे।"

स्वामीने विस्मित होकर पूछा, "वे कौन होते हैं?"

मैंने कहा, "अग्नॉस्टिक वे होते हैं जो ईश्वर है या नहीं, कुछ नहीं कहते—"

बात पूरी होनेके पहले ही उन्होंने कहा, "यह सब आलोचना रहने दो। आगे कभी तुम मेरे सामने इस बातको अपनी जबानपर मत लाना।"

फिर भी मैं उनसे बहस करना चाहती थी; पर हठात् जैसे ही मैंने उनके मुँहकी ओर देखा, मेरे मुँहसे और कोई बात न निकली। मैं जानती थी कि भगवानपर उनका अटल विश्वास है; परन्तु यह नहीं जानती थी कि संसारमें ऐसे लोग भी हैं जो किसीके मुँहसे यह सुनकर कि भगवान् नहीं हैं, इतने अधिक व्यथित हो सकते हैं। इस विषयमें मैंने अपने मामाकी बैठकमें

बहुतसे तर्क स्वयं भी किये थे और दूसरोंको भी तर्क करते सुना था, यह भी अनेक बार देखा था कि लोगोंमें आपसमें कहा-सुनी और नाराज़गी तक हो गई है, परन्तु आज तक कभी किसीको इस प्रकार कष्टसे विवर्ण होते नहीं देखा था। स्वयं मुझे भी कुछ कम व्यथा नहीं हुई, पर उन्होंने बिना कोई तर्क किये इस प्रकार मुँह बन्द करके मेरा जो अपमान किया उससे मेरा सिर नीचा हो गया।—पर मैं अब सोचती हूँ कि मेरे अपमानकी पारी उसी दिन क्यों न समाप्त हो गई ?

ज़मीनपर जिस चटाईको बिछाकर मैं सोया करती थी, वह घरके एक कोनेमें लपेटी हुई रक्खी रहती थी। मैं नहीं कह सकती कि आज उसे किसने हटा दिया था। जब ढूँढ़नेपर भी वह मुझे नहीं मिली, तब उन्होंने स्वयं ही बिछौनेपरसे उठकर एक तोशक निकाली और कहा, "आज इसीको बिछाकर सो रहो। इतनी रातको अब उसे कहाँ ढूँढ़ती फिरोगी !"

उनके स्वरमें व्यंग आदि कहीं नामको भी नहीं था, फिर भी उनकी यह बात अपमानके काँटेकी तरह मेरे कलेजेमें जा चुभी। रोज तो मैं नीचे ही सोती थी,—एक मामूली चटाई बिछाकर उसीपर सारी रात बिता देना ही जैसे मेरा सबसे बड़ा गर्व था। पर कौन जानता था कि स्वामीकी इस एक ज़रा-सी बातसे ही आज मेरा वह गर्व ठीक उतने ही बड़े लांछनके रूपमें परिवर्तित होकर मेरे सामने आ गिरेगा !

अलग सोनेका वह उपकरण मैंने स्वामीके हाथमेंसे ही अपने हाथमें ले लिया; किन्तु लेटते ही रुलाईकी लहर मेरे गले तक आकर फेन उगलने लगी। मैं नहीं कह सकती कि वे उसे सुन पाये या नहीं, पर अभी पूरी तरहसे सबेरा होने भी नहीं पाया था कि मैं जल्दीसे उठकर और अपना बिछौना लपेटकर वहाँसे भागनेकी तैयारी करने लगी। इतनेमें उन्होंने पुकारकर कहा, "आज इतने सबेरे ही उठ बैठीं ?"

मैंने कहा, "नींद खुल गई, इसीलिए बाहर जा रही हूँ।"

उन्होंने कहा, "मेरी एक बात सुनोगी ?"

क्रोध और क्षोभसे मेरा सारा शरीर भर गया। मैंने कहा, "क्या मैं तुम्हारी बात नहीं सुनती ?"

मेरे मुँहकी ओर देखते हुए उन्होंने कुछ हँसकर कहा, "सुनती हो ! अच्छा तो फिर पास आओ, कहता हूँ।"

मैंने कहा, "मैं कुछ बहरी नहीं हूँ। यहीं खड़ी-खड़ी ही सुन लूँगी।"

उन्होंने कहा, "नहीं, उतनी दूरसे न सुन सकोगी।"

इतना कहकर उन्होंने जल्दीसे आगे झुककर मेरा हाथ पकड़ लिया। मैंने ज़ोर लगाकर अपना हाथ छुड़ाना चाहा, पर उनके सामने मेरा ज़ोर कहाँ चल सकता था! उन्होंने उसे एकदम अपनी छातीके पास खींच लिया और ज़ोरसे मेरा मुँह ऊपर उठाते हुए कहा, "जानती हो कि जो लोग भगवानको मानते हैं, वे क्या कहते हैं?—कहते हैं कि स्वामीके सामने कभी झूठ नहीं बोलना चाहिए।"

मैंने कहा, "पर जो भगवानको नहीं मानते, वे तो कहते हैं कि कभी किसीके भी सामने झूठ नहीं बोलना चाहिए।"

स्वामीने हँसकर कहा, "ख़ैर, अगर यही बात है तो फिर कल इतनी बड़ी झूठ तुम्हारे मुँहसे कैसे निकल गई? यह कैसे कहा कि तुम भगवानको नहीं मानतीं?"

अचानक ही मेरे मनमें यह बात आई कि ऐसी आशा करके कभी किसीने किसीके भी साथ बात न की होगी। मेरे मुँहसे बात नहीं निकलना चाहती थी, लेकिन फिर भी अभी तक उस कम्बख्त अहंकारने मेरा पीछा नहीं छोड़ा था, इसलिए मैंने कह ही डाला, "अगर मैं यह कह देती कि भगवानको मानती हूँ तो शायद सच कहना हो जाता? पर मुझे तुमने रोक क्यों रक्खा है? और कुछ कहनेको है क्या?"

उन्होंने कुछ उदास होकर धीरेसे कहा, "हाँ, एक बात और है। आज तुम माँसे माफी माँग लो।"

मारे क्रोधके मेरे शरीरमें आग लग गई। मैंने पूछा—माफी माँगना क्या कोई लड़क-खेलवाड़ है या उसका कोई अर्थ भी है?"

स्वामीने कहा, "इसका अर्थ यही है कि यह तुम्हारा कर्तव्य है।"

मैंने कहा, "शायद तुम्हारे भगवान् यही कहते हैं कि जो निरपराध हो, वही अपराधीके सामने जाकर माफी माँगे और इस प्रकार अपने कर्तव्यका पालन करे?"

स्वामीने मुझे छोड़ दिया और वे कुछ देर तक चुपचाप मेरे मुखकी ओर देखते रहे। इसके बाद धीरेसे बोले, "भगवानका नाम लेकर परिहास नहीं करना चाहिए।—और देखो, यह बात मुझे फिर तुमको स्मरण करानेकी

आवश्यकता न पड़े। मुझे अधिक तर्क करना अच्छा नहीं लगता। अगर तुम माँसे माफी नहीं माँग सकती हो, तो कमसे कम आगे अब कभी उनके साथ विवाद मत करना।"

मैंने कहा, "क्या यह नहीं बतलाओगे कि क्यों?"

वे बोले, "नहीं, निषेध करना मेरा कर्त्तव्य था, इसलिए मैंने निषेध कर दिया।"

इतना कहकर स्वामी बाहर जानेके लिए उठकर खड़े हो गये। मुझसे यह सब नहीं सहा गया, इसलिए मैंने कहा, "क्या तुम्हारा ही कर्त्तव्य-ज्ञान इतना अधिक है? और किसीको अपने कर्त्तव्यका ज्ञान ही नहीं है? मैं भी तो आख़िर आदमी हूँ। मेरा भी तो घरमें कुछ कर्त्तव्य है। अगर तुम्हें यह अच्छा नहीं लगता, तो मुझे मेरे मैके भेज दो। यदि यहाँ रहूँगी तो ज़रूर झगड़ा होगा, यह मैं कहे देती हूँ।

वे जाते जाते लौट आये और खड़े होकर बोले, "तब तो मैं समझता हूँ कि गुरुजनोंके साथ विवाद करना ही तुम्हारा कर्त्तव्य है। अगर यही बात हो, तो जब तुम्हारा जी चाहे, तुम अपने मैके जा सकती हो। मुझे इसमें कुछ भी आपत्ति नहीं है।"

स्वामी चले गये और मैं वहीं धमसे बैठ गई। उस समय मेरे मुँहसे सिर्फ़ यही निकला, "हायरे! जिसके लिए चोरी करती हूँ, वही मुझे चोर कहता है!"

उस दिन सबेरेसे दोपहर तकका मेरा समय जिस प्रकार कटा, उसे मैं ही जानती हूँ। परन्तु दोपहरको अपने स्वामीके मुँहसे मैंने जो कुछ सुना, उससे मेरे आश्चर्यका ठिकाना न रह गया।

भोजनके समय सासने कहा, "बेटा, कल तो मैंने तुमसे कुछ नहीं कहा, पर आज मुझे कहना पड़ता है कि इस बहूके साथ रहकर मैं गृहस्थी नहीं चला सकती। कलकी सब बातें तो तुमने सुनी ही होंगी?"

वे बोले, "हाँ माँ, सब सुन चुका हूँ।"

सासने कहा, "तो फिर जैसे भी हो इसका कोई इन्तजाम कर दो।"

स्वामीने कुछ हँसकर कहा, "लेकिन माँ, इन्तजाम करनेकी मालिक तो तुम्हीं हो न?"

सासने कहा, "तो क्या तुम यह समझते हो कि मैं कर नहीं सकती? नहीं,

एक दिनमें ही सब कर सकती हूँ। मैं तो इतनी बड़ी लड़कीके साथ अपने लड़केका ब्याह ही नहीं करना चाहती थी। सिर्फ—"

स्वामीने कहा, "लेकिन माँ, अब इन सब बातोंको सोचनेसे क्या लाभ? वह चाहे अच्छी हो चाहे बुरी, पर घरकी बड़ी बहूको तुम निकाल तो सकोगी नहीं। वह यदि चाहती है कि मुझे कुछ अच्छा खाने-पीनेको मिला करे, तो तुम इसीका इन्तजाम क्यों नहीं कर देतीं?"

सासने कहा, "घनश्याम, तुमने तो हद कर दी। क्या मैं अच्छी अच्छी चीजें खिलाना नहीं जानती जो आज वह आकर मुझे सिखाएगी? और फिर बेटा, इसमें तुम्हारा भी कोई दोष नहीं है। जिस दिन इतनी बड़ी बहू घरमें आई, उसी दिन मैंने समझ लिया था कि अब मेरी गृहस्थी तितर-बितर हो जायगी। सो बेटा, अब अगर मेरे हाथसे घर-गृहस्थीके काम ठीक तरहसे न चलते हों, तो मैं उसीके हाथमें भंडारकी ताली-कुंजी दे देती हूँ।—कहाँ गई बड़ी बहू, इधर आओ, यह चाबी ले जाओ।"

यह कहकर सासने झनसे चाबियोंका गुच्छा रसोईघरके दरवाजेपर फेंक दिया।

इसपर स्वामीने कुछ भी नहीं कहा। उन्होंने चुपचाप भोजन कर लिया और चलते समय केवल इतना कहा, "सभी औरतोंको यही एक रोग होता है। किससे क्या कहा जाय!"

मेरे हृदयमें मानो प्रसन्नताका ज्वार आ गया—आखिर उन्हें यह पता चल गया कि मैंने किस लिए झगड़ा किया था। और इस बातको मैं सैकड़ों बार आवृत्ति करके हजारों तरहसे मनमें अनुभव करने लगी,—सबेरेकी सारी व्यथा मानों बिलकुल धुल-पुँछ गई।

अब न जाने कितने बार खयाल आया करता है कि लड़कपनमें मतलबकी न जाने कितनी पुस्तकें पढ़कर न जाने कितनी बातें सीखी थीं। किन्तु यदि उस समय कहीं यह बात भी सीख लेती कि संसारमें एक सामान्य या तुच्छ बात ठीक तरहसे न कह सकनेके दोषके कारण—एक छोटी-सी बात मुँहसे स्पष्ट न कह सकनेके कारण, सैकड़ों ही गृहस्थियाँ नष्ट हो जाती हैं। यदि मैंने यह बात भी सीख ली होती तो बहुत सम्भव था कि आज यह कहानी लिखनेकी आवश्यकता ही नहीं होती।

इसीलिए तो मैं अपने आपसे बार बार कहती हूँ कि अरी अभागिनी, तूने इतना सब कुछ सीखा, सिर्फ यही नहीं सीखा कि स्त्रियोंका सम्मान

किसके कारण होता है और किसके अनादरके कारण उनके सम्मानकी अट्टालिका लड़कोंके ताशके बनाये हुए घरकी तरह पलक मारते एक फूँकमें धूलमें मिल सकती है। ऐसी अवस्थामें तेरी तकदीर अगर न फूटेगी तो फिर और किसकी फूटेगी? सन्ध्यासे ही तूने अपने कमरेके किवाड़ बन्द करके इतना शृंगार और तैयारियाँ कीं, असमयमें नींदका बहाना करके स्वामीके पलंगपर एक किनारे तू सो भी गई; पर अपने पतिको जगा बुलानेमें ही तेरा गला इस तरह क्यों बन्द हो गया! वे जब कमरेमें आकर दुविधा और संकोचके कारण बार बार इधर उधर करके अन्तमें फिर बाहर चले गये, तब यदि तूने जरा-सा हाथ बढ़ाकर उनका हाथ पकड़ लिया होता, तो क्या तेरे हाथमें पक्षाघात हो जाता? उस दिन सारी रात जमीनपर पड़े पड़े रोती तो रही, पर एक बार मुँह खोलकर यह जरा-सी बात कहनेमें ही क्या बाधा आ पड़ी कि अच्छा, तुम अपने बिछोनेपर आकर सोओ, मैं अपनी भूमि-शय्यापर ही न हो तो लौटी जाती हूँ?

बहुत रात बीतनेपर जब मेरी नींद खुली तब ऐसा जान पड़ा कि ज्वर हो आया है। मैं उठकर बाहर जा रही थी कि इतनेमें स्वामी अन्दर आ गये। मैं सिर नीचा करके पास ही खड़ी रही। उन्होंने कहा, "तुम्हारे गाँवके नरेन्द्र बाबू आये हैं।"

मेरा कलेजा धकसे काँप गया।

स्वामी कहने लगे, "वे हमारे निखिलके कालेजके दोस्त हैं। अखिल शायद उन्हें कलकत्तेमें निमन्त्रण दे आया था कि कभी हमारे चितोरमें आकर हंसका शिकार खेलना। इसी लिए वे यहाँ आये हैं। तुम भी तो उन्हें अच्छी तरह पहचानती हो?"

ओह! क्या आदमीके हौसलेकी कोई हद ही नहीं होती!

मैंने सिर्फ सिर हिलाकर उन्हें जतला दिया कि हाँ जानती हूँ। लेकिन मारे घृणा और लज्जाके मैं सिरसे पैर तक मानो पानी हो गई।

स्वामीने कहा, "अपने पड़ोसीका आदर-सत्कार करनेका भार तुम्हें अपने ऊपर लेना पड़ेगा।"

यह सुनते ही मैं इस तरह चौंक पड़ी कि मुझे भय हुआ कि शायद मेरे इतने चौंकनेपर उनका भी ध्यान न चला गया हो। परन्तु उनका ध्यान इस

और नहीं था। उन्होंने कहा, "कल रातसे माँका वातवाला रोग बहुत बढ़ गया है। इधर निखिल भी घर नहीं है और अखिलको अपने आफिस जाना होगा।"

मैंने सिर नीचा किये हुए बहुत मुश्किलसे पूछा, "और तुम?"

उन्होंने कहा, "मैं तो किसी तरह नहीं रह सकता। पाट खरीदनेके लिए रायगंज जाना बहुत जरूरी है।"

मैंने कहा, "और लौटोगे कब तक?"

उन्होंने कहा, "मैं कल इसी समय तक लौटूँगा। रातको वहीं रहना होगा।"

मैंने कहा, "तो उनसे कहीं और जगह ठहरनेके लिए कह दो। मैं यहाँकी बहू ठहरी ससुरालमें उनके सामने न निकल सकूगी।"

स्वामीने कहा, "वाह, ऐसा भी कहीं हो सकता है! मैं इन्तजाम किये जाता हूँ। अगर तुम उनके सामने न हो सको तो आड़में रहकर ही उनकी सब व्यवस्था कर देना।"

यह कहकर स्वामी बाहर चले गये।

कोई पाँच महीनोंके बाद उस दिन नरेन्द्रको देखा। दोपहरको वह भोजन करने बैठा था और मैं रसोई-घरके दरवाजेकी आड़में बैठी थी। उस समय मैं अपनी आँखोंका कुतूहल किसी प्रकार न रोक सकी। लेकिन उसे देखते ही मेरा मन एक प्रकारकी ऐसी वितृष्णासे भर गया कि वह दूसरेको समझाना बहुत मुश्किल है। जिस प्रकार किसी बहुत बड़े जहरीले बिच्छूको टेढ़ी तिरछी चालसे चलते हुए देखकर सारे शरीरकी दशा हो जाती है, फिर भी जब तक वह नजरके सामने रहता है, तब तक उसकी तरफसे आँख हटाई नहीं जा सकती, ठीक उसी प्रकार मैं नरेन्द्रकी ओर देखती रह गई। छी, छीं, मैंने उस दिन उसका शरीर छुआ था, यह ध्यान आते ही मेरे शरीरमें रोमांच हो आया; यहाँ तक मेरे सिरके बाल भी खड़े हो गये।

मैं जान गई कि खाते समय बीच बीचमें नजर उठाकर चारों तरफ वह किसे ढूँढ़ रहा है। जब रसोई करनेवाली मिसरानी कोई तरकारी देने आई तब उसने एकाएक मानों बड़े आश्चर्यसे पूछा, "क्योंजी, तुम्हारी बड़ी बहू नहीं दिखाई पड़ीं?"

मिसरानी जानती थी कि वह मेरे मैकेका आदमी है और उस गाँवका जमींदार है। शायद इसी लिए उसने उसे प्रसन्न करनेके विचारसे ही हँसते हुए ढेरकी ढेर बातें कहकर उसका मन रख दिया। उसने कहा, "क्या कहूँ

बाबूजी, बड़ी बहू बड़ी लजालु हैं। यों तो उन्होंने स्वयं ही आपके लिए रसोई बनाई है और रसोई-घरमें बैठी हुई वे ही आपके खाने-पीनेका सब बन्दोबस्त कर रही हैं; पर बाबूजी, आप लज्जाके कारण भूखे मत रह जाइए, नहीं तो उन्होंने मुझसे कह दिया है कि मैं तुमपर बहुत बिगड़ूँगी।"

आदमीकी शैतानीकी भी कोई हद है और दुस्साहसकी भी कोई सीमा है! नरेन्द्रने खूब स्वच्छन्दतापूर्वक और स्नेहसे हँसकर रसोई-घरकी तरफ देखा और जोरसे कहा, "अरे सौदामिनी, तू मुझसे भी लज्जा करती है? आ आ, बाहर आ। बहुत दिनोंसे देखा नहीं। आ, जरा तुझे देखूँ तो।"

मैं काठ होकर किवाड़ पकड़े खड़ी रही। मेरी मँझली देवरानी रसोई-घरमें थी। उसने हँसीसे कहा, "बहनकी सभी बातें निराली हैं। गाँवके आदमी हैं, भाईके बराबर हैं। ब्याहके दिन तक तो तुम उनके सामने होती रहीं, बातें करतीं रहीं और आज उन्हींसे इतनी लज्जा! एक बार देखना चाहते हैं, जरा चली जाओ न!"

भला, इस बातका मैं क्या उत्तर देती!

दोपहरको दो ढाई बज गये थे। घरके सभी लोग अपने अपने कमरेमें सोये हुए थे। इतनेमें नौकरने बाहरसे आकर कहा, "बहूजी, बाबू पान माँगते हैं।"

"कौन बाबू?"

"नरेन्द्र बाबू।"

"वे शिकार खेलने नहीं गये?"

"नहीं तो। वे बैठकमें लेटे हुए हैं।

मैंने समझ लिया कि शिकारका खाली बहाना है।

मैं नौकरके हाथ पान भेजकर खिड़कीके पास आ बैठी। जबसे मैं इस घरमें आई थी, तबसे यह खिड़की ही मुझे सबसे अधिक प्रिय थी। उसके नीचे ही छोटा-सा बाग था। खिड़कीके ठीक सामने चमेलीका एक पेड़ था जिससे उस खिड़कीका बहुत अंश छिपा रहता था। यहाँ बैठनेपर बाहरकी तो सब चीजें दिखाई पड़ती थीं, पर बाहरसे खिड़कीके अन्दरका कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता था।

मैं मनुष्यके मनके सम्बन्धमें एक बहुत ही विलक्षण बात यह देखती हूँ कि जब कोई विपत्ति अचानक उसके सिरपर आ पड़ती है और उसे बहुत अधिक अस्थिर और उद्विग्न कर देती है तब कभी कभी ऐसा होता है कि वह उस

विपत्तिको तो एक ओर रख देता है और दूसरी किसी तुच्छ बातकी चिन्ता करने बैठ जाता है। यह ठीक है कि पान भेज देनेके बाद मैं नरेन्द्रकी ही बात सोच रही थी, पर मुझे इस बातका पता भी नहीं लगा कि कब, किस रास्तेसे, मेरे स्वामीने मेरे सारे मनपर अधिकार कर लिया है!

मैं अपने स्वामीको जितना ही देखती थी, उतनी ही अधिक चकित होती थी और सबसे अधिक चकित होती थी उनकी क्षमा करनेकी क्षमतापर। पहले मैं इसे उनकी दुर्बलता ही समझा करती थी—मैं सोचती थी कि उनमें पुरुषत्वका अभाव है, उनमें किसीको कोई दंड देनेकी शक्ति ही नहीं है और इसी लिए वे सबको क्षमा कर दिया करते हैं। पर ज्यों ज्यों दिन बीतते थे, त्यों त्यों अनुभव होता जाता था कि वे जितने ही बुद्धिमान् हैं, उतने ही दृढ़ भी हैं। इस बातका अनुभव तो मैं निस्सन्देह रूपसे करती थी कि वे मन ही मन मुझसे कितना अधिक प्रेम करते हैं, परन्तु उस प्रेमपर अपना जरा-सा भी जोर चलानेका साहस मुझे नहीं होता था।

एक दिन यों ही बातों ही बातोंमें मैंने उनसे कह दिया था कि "तुम ही सारे घरके पूरे पूरे मालिक हो, फिर भी घर भरके लोग तुम्हारी कोई परवा नहीं करते, अवहेलना करते हैं, यहाँ तक कि अत्याचार करते हैं, इसका क्या तुम उन्हें दंड नहीं दे सकते ?"

इसपर उन्होंने हँसकर कहा, "कहाँ, कोई तो मेरा अनादर नहीं करता!"

किन्तु मैं बहुत अच्छी तरह जानती हूँ कि कोई भी बात ऐसी नहीं थी जिसका उन्हें पता न हो।

मैंने पूछा, "अच्छा, चाहे कितना ही बड़ा दोष हो, तुम माफ कर सकते हो ?"

उन्होंने फिर उसी प्रकार हँसते हुए कहा, "जो सचमुच ही क्षमा चाहता हो उसे तो क्षमा करनी ही चाहिए। यह तो हमारे महाप्रभुका आदेश है।"

इसी लिए मैं कभी कभी चुपचाप बैठी सोचा करती थी कि यदि भगवान् सचमुच ही नहीं हैं तो फिर इन्होंने इतनी शक्ति, इतनी शान्ति, पाई कहाँसे ? स्वयं मैंने ही आज तक उनके प्रति अपने कर्त्तव्यका एक दिनके लिए भी पालन नहीं किया; लेकिन फिर भी उन्होंने आज तक कभी मुझपर स्वामीका जोर जतलाकर मेरी अप्रतिष्ठा या अपमान नहीं किया।

हमारे कमरेमें एक ताकपर गौरांग महाप्रभुकी संगमर्मरकी मूर्ति रक्खी थी। जब कभी रातको नींद खुल जाती, तब देखती कि मेरे स्वामी बिछौनेपर चुपचाप

लेटे टक लगाये उसी मूर्तिकी ओर देख रहे हैं और उनकी दोनों आँखोंसे आँसुओंकी धारा बह रही है। बीच बीचमें उनका मुँह देखकर मुझे भी रुलाई सी आ जाती थी और मैं सोचती थी कि इस तरह यदि एक दिन भी मैं रो सकूँ तो सम्भवतः मेरे मनकी आधी वेदना दूर हो जाय। पास ही एक दूसरे ताकपर कई पुस्तकें भी रक्खी थीं जिनपर उनका बहुत प्रेम था। उनकी देखा-देखी मैं भी कभी कभी उन्हें पढ़ती थी। यह बात तो नहीं है कि उन पुस्तकोंमें लिखी हुई बातोंपर मैं सचमुच ही विश्वास करती थी, तो भी कभी कभी ऐसा अवश्य हुआ है कि उनके पढ़नेमें मेरा मन लग गया है और मेरी आँखोंसे दो बूँद आँसू निकलकर गालोंपर आकर सूख गये हैं और मैं जान भी नहीं पाई हूँ। कई बार मेरे मनमें यह ईर्ष्या भी हुई है कि कहीं इन सब बातोंको मैं भी उन्हींकी तरह सच समझ सकती!

इधर कुछ दिनोंसे ऐसा जान पड़ता था कि एक व्यथा मानो प्रतिदिन ही मेरे हृदयमें जमा हो रही है। पर यह पता नहीं चलता था कि वह व्यथा क्यों और किसके लिए होती है। सिर्फ यही जान पड़ता था कि मानो मेरा कहीं कोई नहीं है। सोचती थी कि शायद माँके लिए ही मेरा जी ऐसा होता है; इस लिए मैंने कई बार निश्चय किया कि उनसे कहूँगी कि कल ही मुझे मैके भेज दो। पर फिर भी ज्यों ही यह ध्यान आ जाता था कि मैं यह घर छोड़कर और कहीं जा रही हूँ, त्यों ही मेरा सारा संकल्प-विकल्प न जाने कहाँ बह जाता और उनसे मुँह खोलकर नहीं कह सकती।

मैंने सोचा कि चलूँ, ताक परसे किताब लाकर पढ़ूँ। एक किताब आजकल मुझे कुछ विशेष रूपसे सान्त्वना प्रदान करती थी, पर ज्यों ही उठने लगी, त्यों ही हठात् मेरे आँचलपर कुछ खिंचाव पड़ा और मैंने मुड़कर देखा, तो मुझे स्वयं अपनी आँखोंपर विश्वास नहीं हुआ। देखा कि नरेन्द्र मेरा आँचल पकड़े हुए खिड़कीके बाहर खड़ा है। देखनेमें जरा भी विलम्ब होता तो मैं चिल्ला उठी होती! कब आया और कबसे इस तरह खड़ा है, कुछ भी नहीं जान सकी। किन्तु उस दिन मैंने किस प्रकार अपने आपको सँभाल लिया, इसे मैं आज भी नहीं समझ सकती। मैं घूमकर खड़ी हो गई और उससे बोली, "यहाँ क्यों आये हो? शिकार करने?"

नरेन्द्रने कहा, "बैठो, बतलाता हूँ।"

मैंने खिड़कीके ऊपर बैठकर पूछा, "शिकार खेलने क्यों नहीं गये?"

नरेन्द्रने कहा, "घनश्याम बाबूका हुक्म नहीं मिला। वे चलते समय कह गये थे कि हम लोग वैष्णव हैं। हमारे घर जीव-हत्या करना मना है।"

पलक मारते ही अपने स्वामीके गर्वसे मेरी छाती फूल गई। वे अपने किसी कर्तव्यको नहीं भूलते, इस सम्बन्धमें उनमें जरा भी दुर्बलता नहीं है। मन ही मन सोचा कि जरा यह भी देख जाए कि मेरे स्वामी कितने महान् हैं!

मैंने पूछा, "तो फिर घर क्यों नहीं लौट गये?"

उसने जंगलेमेंसे चटसे मेरा हाथ पकड़कर उसे दबाते हुए कहा, "सौदामिनी, जब टाइफाइड ज्वरसे मरते मरते बचकर सुना कि तुम अब मेरी नहीं रह गईं और पराई हो गई, तबसे बराबर यही कहता रहा हूँ कि हे भगवन्, तुमने मुझे जीता क्यों रक्खा? तुम्हारे निकट मैंने इस छोटी-सी उम्रमें ऐसा कौन-सा पाप किया था जिसका दंड देनेके लिए तुमने मुझे जीवित रक्खा?"

मैंने पूछा, "तुम भगवानको मानते हो?"

नरेन्द्रने कुछ इतस्ततः करते हुए कहा, "नहीं—हाँ—नहीं—, मैं नहीं मानता। पर जानती हो कि उस समय—"

"अच्छा, जाने दो—फिर?"

नरेन्द्रने कहा, "ओह, वह भी मेरा कैसा दिन था जिस दिन मैंने सुना कि तुम केवल मेरी ही हो—सिर्फ नामके लिए दूसरेकी हो, नहीं तो सदाके लिए मेरी हो और अब भी तुमने एक दिनके लिए भी किसीकी शय्यापर रात्रि—"

"छी छी, चुप रहो। पर तुम्हें यह खबर दी किसने? यह किससे सुना?"

"तुम्हारी उसी दासीने जो तीन चार दिन हुए, घर जानेका बहाना करके चली गई है, जो—"

"तो क्या मुक्ता तुम्हारी ही तरफसे रक्खी हुई थी?"

इतना कहकर मैंने जोर लगाकर अपना हाथ छुड़ाना चाहा, लेकिन वह तब भी उसी तरह जोरसे पकड़े हुए था। उसकी आँखोंसे दो बूँद आँसू भी ढलक पड़े। उसने कहा, "क्यों सौदामिनी, क्या इसी प्रकार हम लोगोंके जीवनका अन्त हो जायगा? अगर मैं बीमार न हो गया होता तो आज कोई भी हम लोगोंको इस तरह एक दूसरेसे अलग न कर सकता। जिस बातमें स्वयं मेरा कोई अपराध नहीं है, उसके लिए मैं क्यों इतना बड़ा दंड भोगूँ? लोग भगवान् भगवान् कहते हैं, परन्तु यदि सचमुच भगवान् होते, तो क्या

वे मुझे बिना अपराधके ही इतना बड़ा दंड देते ! कभी नहीं। और तुम्ही क्यों एक बिना जाने पहचाने और मूर्खके—"

"बस बस, यह सब रहने दो।"

नरेन्द्रने चौंककर कहा, "अच्छा, जाने दो। लेकिन अगर मैं जानता कि तुम सुखसे हो, आनन्दपूर्वक हो, तो शायद मैं अपने मनको कुछ सान्त्वना भी दे सकता। पर मेरे लिए कुछ भी तो सहारा नहीं है, मैं जीता कैसे रहूँगा?"

उसकी आँखोंमें फिर जल भर आया। उसने मेरा हाथ खींचकर उसीसे अपनी आँखें पोंछ लीं और कहा, "भला इस संसारमें ऐसा और कौन-सा सभ्य देश है जहाँ इतना बड़ा अन्याय हो सकता है ! क्या औरतोंमें जान नहीं होती ? उनकी इच्छाके विरुद्ध उनका ब्याह करके इस प्रकार जन्म-भर उन्हें जलानेका अधिकार संसारमें किसको है ? और कौन ऐसा देश है जहाँकी स्त्रियाँ इच्छा करने पर इस प्रकारके ब्याहपर लात मारकर और उसे तोड़कर जहाँ जी चाहे वहाँ, नहीं जा सकतीं ?"

मैं ये सभी बातें जानती थी। नवीन युगकी साम्य, मैत्री और स्वाधीनताकी ऐसी कोई आलोचना बाकी नहीं बची थी जो मेरे मामाके यहाँ न हुई हो। मेरा भीतरी मन मानो डोलने लगा। मैंने पूछा, "तुम मुझसे क्या करनेको कहते हो ?"

नरेन्द्रने कहा, "मैं तुमसे कुछ भी नहीं कहूँगा। मैं तुम्हें सिर्फ यही जता जाऊँगा कि जबसे मैं मौतके मुँहसे बचकर निकला हूँ, तबसे केवल इसी दिनकी प्रतीक्षा करता रहा हूँ। इसके बाद शायद एक दिन तुम सुन पाओगी कि मैं जिससे बचकर यहाँ तक आया हूँ, उसीके पास फिर चला गया हूँ।—लेकिन सौदामिनी, तुमसे मेरा यही अन्तिम निवेदन है कि यदि जीते-जी कुछ नहीं पा सका, तो कमसे कम मरने पर तो मैं तुम्हारी आँखोंका दो बूँद जल पा जाऊँ। यदि आत्मा नामकी कोई चीज होगी, तो वह उन बूँदोंसे ही तृप्त हो जायगी।"

मेरा हाथ उसके हाथमें ही रहा आया, मैं चुपचाप बैठी रही। अब मैं सोचती हूँ कि अगर उस दिन मैं जरा भी यह बात जानती होती कि मनुष्यके मनका मूल्य इतना कम है और कभी कभी इस मनको उल्टी तरफ बहनेमें इतना कम समय लगता है, इतनी-सी ही सामग्रीकी आवश्यकता होती है, तो उस दिन, चाहे जिस तरह होता, मैं उससे अपना हाथ छुड़ाकर खिड़की बन्द कर लेती

और उसकी किसी भी बातको किसी तरह अपने कानों तक न पहुँचने देती। उसने बातें ही कितनी की थीं ? उसकी आँखोंके जलकी बूँदें ही कितनी खर्च हुई थीं ! लेकिन जिस प्रकार नदीके प्रचंड स्रोतके कारण उसके किनारेके वृक्ष अपने पत्तों-समेत काँपने लगते हैं, ठीक उसी प्रकार मेरा सारा शरीर काँपने लगा। उस समय मुझे ऐसा जान पड़ने लगा कि नरेन्द्रने किसी अद्भुत कौशलसे मेरी पाँच अँगुलियोंमेंसे पाँच सौ बिजलियोंकी धारायें मेरे सर्वांगमें बहा दी हैं और वे मेरे पैरोंके नखोंसे लेकर बालोंके अन्तिम छोर तकको बेबस किये डालती हैं।

उस दिन यदि हम लोगोंके बीचमें खिड़कीके वे छड़ न होते और वह मुझे खींचकर ले भागनेमें किसी प्रकार समर्थ होता, तो शायद मैं चिल्लाकर यह भी न कह सकती—अरे कोई है ! मुझे बचाओ ! मैं नहीं कह सकती कि हम दोनों कितनी देर तक इसी प्रकार स्तब्ध रहे। अन्तमें अचानक उसने कहा, "सौदामिनी !"

"क्यों ?"

"तुम तो बहुत अच्छी तरह जानती हो कि पुरुषोंके बनाये हुए झूठे शास्त्र केवल स्त्रियोंको बाँध रखनेकी बेड़ियाँ हैं। जिस प्रकार हो, उन्हें रोके रखकर उनसे सेवा लेनेके खाली जाल हैं। सतीत्वकी महिमा केवल स्त्रियोंको बतलाई जाती है—पुरुषोंके लिए कुछ नहीं। यह सब धोखा है। जिसे लोग आत्मा कहते हैं, वह क्या स्त्रियोंके शरीरमें नहीं होती ? वे क्या इस संसारमें केवल पुरुषोंकी सेवा-दासी बननेके लिए ही आई हैं ?"

"क्यों बहू, क्या तुम लोगोंकी बातें कभी खत्म ही न होंगी ?"

मैं समझती हूँ कि सिरपर वज्रके आ पड़नेपर भी मनुष्य इस तरह नहीं चौंकता, जिस तरह हम दोनों चौंक उठे। नरेन्द्र मेरा हाथ छोड़कर नहीं बैठ गया और मैंने मुँह फेरकर देखा कि बरामदेमें खुली हुई खिड़कीके ठीक सामने मेरी सास खड़ी हैं।

सासने फिर कहा, "इस गाँवके लोग उतने सभ्य भव्य तो हैं नहीं। अगर तुम लोगोंको इस तरह आड़में खड़े होकर रोते-धोते देख लेंगे तो ऐब लगायेंगे। इससे अच्छा तो यही था कि तुम बाबूको घरके अन्दर ही बुलवा लेतीं। यह देखने सुननेमें और हर तरहसे ठीक होता।"

मैं उत्तर देना ही चाहती थी, पर मेरी जबान जड़वत् हो रही, एक शब्द

मी न कह सकी। कुछ हँसते हुए वे फिर बोलीं, "बेटी, मैं कह तो सकती नहीं; खाली सोच-सोचकर ही मेरी जाती हूँ कि मेरी बहू क्यों इतना कष्ट सहकर जमीनपर सोया करती है।—अच्छी बात है। बाबूजी दोपहरको चाय पीते हैं। चाय तैयार भी हो गई है। सो एक बार मुँह बढ़ाकर उनसे पूछ लो कि चायका प्याला मैं बैठकमें भेज दूँ या बागमें खड़े खड़े ही पीएँगे?"

मैं उठकर खड़ी हो गई और बहुत अधिक चेष्टा करनेपर बात कह सकी। बोली, "क्यों माँ, क्या तुम रोज इसी तरह आड़में खड़ी होकर बातें सुना करती हो?"

सासने सिर हिलाते हुए कहा, "नहीं बेटी, मुझे इतना समय ही कहाँ मिलता है! घर-गृहस्थीके कामोंसे ही तो छुट्टी नहीं मिलती। यही देखो न, बातकी पीड़ाके कारण मरी जा रही हूँ, फिर भी चाय तैयार करनेके लिए मुझे रसोई-घरमें जाना पड़ा। अच्छा, अब चाय यहीं भेज देती हूँ। बाबूजी बड़े लज्जाशील मालूम होते हैं। शायद मेरे सामने चाय न पीएँ, इसलिए मैं जाती हूँ।"

इतना कहकर सास कुछ अजब ढंगसे मुस्कराती हुई वहाँसे चली गई। ऐसा होता है स्त्रियोंका विद्वेष! अपना बदला चुकानेके समय सासने अपने सास-बहूवाले मान्य सम्बन्धकी छुटाई-बड़ाईका कोई व्यवधान ही न रहने दिया।

मैं उसी जगह जमीनपर आँखें बन्द करके लेट गई। मेरे सारे शरीरसे झर-झरकर इतना पसीना बह निकला कि उससे सारी जमीन तर हो गई।

केवल यही एक सान्त्वना थी कि आज वे नहीं आवेंगे। कमसे कम आजकी रात तो मैं चुपचाप पड़ी रह सकूँगी और उनके सामने मुझे कोई कैफियत न देनी होगी।

कई बार सोचा कि उठ बैठूँ और इस तरह कुछ काम-धन्धा करने लगूँ कि जो कोई बात ही न हुई हो। परन्तु यह किसी तरह न कर सकी। मेरा सारा शरीर थरथराने लगा।

सन्ध्या बीत गई, पर मेरे कमरेमें कोई रोशनी जलाने न आया।

रातको कोई आठ बजे थे। इतनेमें बाहरसे उनके बोलनेकी आवाज सुनाई पड़ी। सुनते ही ऐसा जान पड़ा कि मेरे हृदयमें रक्तकी गति एक दमसे बन्द हो गई है। वे नौकरसे पूछ रहे थे—"बंकू, नरेन्द्र बाबू इस तरह अचानक क्यों चले गये?"

नौकरका उत्तर तो सुनाई नहीं दिया, पर उन्होंने उससे कहा, 'मैं समझता हूँ कि शायद मैंने उन्हें शिकारके लिए मना किया था, इसीलिए वे चले गये। लेकिन मेरे लिए और उपाय ही क्या था!"

ज्यों ही उन्होंने मकानके अन्दर पैर रक्खा, त्यों ही सासने पुकारकर कहा, "बेटा, ज़रा इधर तो आओ।"

मैं जानती थी कि मेरे पास आनेमें पल-भरकी देरी भी उनसे न सही जायगी। आखिर जब वे मेरे कमरेमें आये, उस समय मैं किसी प्रचंड निष्ठुर आघातकी प्रतीक्षा करती हुई अपने सारे शरीरको काठके समान कड़ा किये हुए पड़ी थी। लेकिन उन्होंने मुझसे एक बात भी नहीं कही। वे कपड़े उतारकर सन्ध्या-आह्निक करनेके लिए बाहर चले गये—मानों कुछ हुआ ही न हो, मानो सासने अभी उनसे कोई बात ही न कही हो। इसके बाद भोजन आदिसे निश्चिन्त होकर वे कमरेमें सोने आये।

सारी रात बीत गई, पर उन्होंने मुझसे एक बात भी नहीं की। सबेरे मैंने जी-जानसे उद्योग करके सारी दुविधा और संकोच मानों अपने शरीरसे झाड़ डाला और मैं रसोई-घरमें जाने लगी कि इतनेमें मेरी मँझली देवरानीने कहा, "बहन, रसोई घरमें आनेकी ज़रूरत नहीं। आज मैं ही यहाँ रहूँगी।"

मैंने पूछा, "क्या तुम्हारे रहते मुझे यहाँ नहीं रहना चाहिए?"

वह बोली, "ज़रूरत ही क्या है! माँने न जाने क्यों मनाकर दिया है।"

इतना कहकर उसने गर्दन फेर ली और वह धीरे धीरे मुस्कराने लगी। मुझे भी उसकी इस मुस्कराहटका तुरन्त ही पता चल गया। मेरे मुँहसे एक बात भी न निकली। मैं अवसन्न होकर कुछ देर चुपचाप खड़ी रही और फिर अपने कमरेमें चली आई।

मैंने देखा कि घर-भरके सभी लोगोंके मुखपर घोर अन्धकार छाया हुआ है, केवल उन्हींके मुखपर कोई विकार नहीं है जिनके मुखपर सबसे अधिक अन्धकार होना चाहिए था। स्वामीका सदा प्रसन्न रहनेवाला मुख आज भी उसी प्रकार प्रसन्न था।

कितना अच्छा होता यदि मैं एक बार जाकर उनसे कह सकती कि—प्रभु, इस पापिष्ठाके मुखसे ही इसके अपराधका विवरण सुनकर तुम अपने हाथोंसे दंड दे दो; इन सब लोगोंका यह विचार-हीन दंड तो मुझसे नहीं सहा

जाता! लेकिन यह मैं किसी तरह न कह सकी। तो भी उसी मकानमें और उसी कमरेमें मेरे दिन बीतने लगे।

आज मैं जानती हूँ कि यह किस तरह मेरे द्वारा संभव हो सका। जो काल माताके हृदयसे पुत्र-शोक तकका भार हलका कर देता है, यदि उसी काल, उसी समयने इस पापिष्ठाके सिरसे भी इसके अपराधका बोझा हलका कर दिया तो इसमें विचित्रता ही क्या हुई? मनुष्य जो दंड किसी दिन अकातर भावसे अपने सिरपर ले लेता है, यदि किसी दिन उसे ही फिर अपने सिरसे फेंक सकता है, तो वह आरामकी साँस लेता है। समयका व्यवधान अपराधकी गुरुता ज्यों ज्यों अस्पष्ट करता जाता है, ज्यों ज्यों लघु बनाता जाता है, दंडका भार त्यों त्यों और भी गुरुतर और भी असह्य होता जाता है। यही है मनुष्यका मन और यही है उसकी रचना। वह उसे अनिश्चित संशयमें बहुत ही उग्र और भीषण बना देता है। एक दिन, दो दिन, करके जब सात दिन बीत गये, तब मेरे मनमें रह-रहकर यही बात आने लगी कि मैंने इतना बड़ा कौन-सा अपराध किया है जो स्वामी मुझसे एक बात भी न पूछेंगे और बिना विचार किये दंड ही देते जायँगे? पर अब मैं केवल यह सोचती हूँ कि उस समय यह बुद्धि मुझे कहाँसे आई थी कि वे भी सब लोगोंके साथ मिलकर चुपचाप मुझे कष्ट ही देते आ रहे हैं!

उस दिन सबेरे मैंने सासको कहते सुना, "क्यों री मुक्ता, तू लौट आई? चार-पाँच दिनके लिए कहकर गई थी, सो इतने दिन लगा दिये?"

मैंने मन ही मन समझ लिया कि मुक्ता फिर क्यों लौटकर आई है।

जब मैं नहाने जा रही थी, तब मुक्तासे सामना हुआ। उसने मुस्कराकर मेरे हाथमें एक कागज़का टुकड़ा थमा दिया। अचानक मुझे ऐसा जान पड़ा कि उसने जलता हुआ अंगारा मेरे हाथपर रख दिया है। जी चाहा कि उसे उसी समय टुकड़े टुकड़े करके फेंक दूँ। पर वह थी नरेन्द्रकी चिट्ठी। यदि मैं उसे बिना पढ़े ही फाड़कर फेंक देती तो फिर स्त्रियोंके मनमें विश्वका अप्रस्फुटित और चिरन्तन कुतूहल एकत्र हुआ है किसलिए? निर्जन तालाबके किनारे पानीमें पैर लटकाकर मैं वह चिट्ठी खोलकर बैठ गई। बहुत देरतक तो मैं उसमेंका एक वाक्य भी न पढ़ सकी। चिट्ठी लाल स्याहीसे लिखी हुई थी। मुझे ऐसा जान पड़ने लगा कि उसके वे लाल लाल अक्षर कानखजूरोंकी तरह उस कागजपर किलबिल-किलबिल करते हुए इधर-उधर हिल-

डुल रहे हैं। इसके बाद मैंने उसे एक बार, दो बार, तीन बार पढ़ा। फिर टुकड़े टुकड़े करके उसी तालाबमें फेंक दिया और मैं स्नान करके घर लौट आई। आख़िर उस चिट्ठीमें था क्या? उसमें वही लिखा था जो संसारमें सबसे बड़ा अपराध है।

धोबी आकर बोला "बहूजी, बाबूके मैले कपड़े दे दो।"

कपड़ोंकी जेबें देख रही थी कि एक पोस्ट-कार्ड निकल आया। हाथमें लेकर देखा तो वह मेरे नामकी चिट्ठी थी, माँने लिखी थी। तारीख देखी तो पाँच दिन पहलेकी थी, परन्तु मुझे नहीं दी गई थी।

पढ़कर देखा तो सर्वनाश नज़र आया। माँने लिखा था कि घरम आग लग जानेसे रसोई-घरको छोड़कर और सब कुछ जल गया। उसी रसोई-घरमें अब सब लोग बड़ी कठिनतासे रहकर समय बिता रहे हैं।

मेरी आँखें जलने लगीं, पर उनमेंसे एक बूँद भी आँसू न निकला। मैं नहीं कह सकती कि कब तक मैं उसी प्रकार बैठी रही। पर जब धोबी चिल्लाया तो सजग होकर उठ बैठी और चटपट कपड़े वग़ैरह उसके सामने फेंककर बिछौनेपर लेट गई। आँसुओंसे सारा तकिया भीग गया। सोचने लगी कि क्या यही उनकी ईश्वर-परायणता है? मेरी माँ ग़रीब है। इसी भयसे मुझे उसकी यह चिट्ठी तक नहीं दी गई कि मैं उनसे किसी प्रकारकी सहायता न माँग बैठूँ। क्या मेरे नास्तिक मामा कभी इतनी बड़ी क्षुद्रता दिखला सकते थे?

उस दिन जब वे घरमें आये, तो मैंने कहा, "हमारा घर जल गया है!"

उन्होंने मेरे मुँहकी ओर देखकर पूछा, "कहाँ सुना?"

पोस्ट कार्डको उनके ऊपर फेंककर जवाब दिया, "धोबीको कपड़े देते हुए तुम्हारे जेबमें ही मुझे यह मिला है। जानती हूँ कि तुम नास्तिक समझकर मुझसे घृणा करते हो। परन्तु जो लोग दूसरोंकी चिट्ठियाँ छिपकर पढ़ते और मुखबिरी करते-फिरते हैं, उनसे मैं भी घृणा करती हूँ। क्या तुम्हारे घरभरके लोगोंका यही काम है?"

जो स्वयं ही सिरसे पैरोंतक अपराधमें डूबा हुआ हो, उसके मुँहसे ऐसी बात! परन्तु मैं निस्सन्देह होकर कह सकती हूँ कि इतना बड़ा स्पर्धापूर्ण आघात मेरे स्वामीको छोड़कर और कोई नहीं सह सकता था। महाप्रभुकी आज्ञा अक्षय कवचकी भाँति इस प्रकार उनके मनको दिन-रात चारों ओरसे घेरे रहती थी कि उसके सामने मेरा यह तीक्ष्ण शूल भी टुकड़े टुकड़े होकर गिर पड़ा।

वे कुछ म्लान हँसी हँसकर बोले, "भई, मैंने उसे न जाने कैसी अन्यमनस्कावस्थामें पढ़ डाला था। सौदामिनी, तुम मुझे माफ करो।"

आज ही उन्होंने पहले पहल मुझे नाम लेकर पुकारा।

मैंने कहा, "झूठ। अगर यही बात होती तो मेरी चिट्ठी मुझे दे देते। मैं यह भी जानती हूँ कि क्यों यह खबर मुझसे छिपाई गई।"

उन्होंने कहा, "तुम यह खबर सुनकर केवल दुखी होतीं, इसीलिए मैंने सोचा था कि तुम्हें कुछ दिन बाद सुनाऊँगा।"

मैंने कहा, "अब मेरी समझमें आ गया कि तुम कैसे ज्योतिषी हो। एक तुम्हारा ही क्या जिक्र है तुम्हारे घर-भरके सभी लोग मेरे पीछे जासूसोंकी तरह लगे रहते हैं। जानते हो कि अँगरेज-महिलाएँ ऐसे स्वामीका मुख तक नहीं देखतीं?"

अरी अभागिनी, कह ले, जो तेरे मुँहमें आवे सब कह ले! तेरा दंड अभी गया कहाँ है! सब जमा किया हुआ रक्खा है।

स्वामी स्तब्ध होकर बैठे रहे। एक बातका भी उन्होंने जवाब नहीं दिया। अब मेरी समझमें आता है कि इतनी क्षमा भी मनुष्य कर सकता है!

परन्तु इतने दिनोंसे मेरे मनमें जो ग्लानि और अपमान धीरे धीरे जग उठा था, उसने एक बार मुक्ति पाकर फिर किसी तरह लौटना नहीं चाहा।

कुछ ठहरकर मैंने फिर कहा, "मेरे रसोई-घरमें घुसते ही—"

वे मानो चौंककर बीचमें ही बोल उठे, "ओह! यह बात थी! तभी अब मेरे खाने-पीनेकी व्यवस्था—"

मैंने कहा, "मुझे इस बातकी कोई शिकायत नहीं है। पर मैंने हिन्दूके घर जन्म लिया है, इसीलिए यह अधिकार मैं तुम लोगोंको किसी भी तरह न दूँगी कि तुम लोग कोंच कोंचकर और तिल तिल करके मेरे प्राण ले लो। मेरे मामाके घर अब भी तो रसोई-घर बचा हुआ है, मैं फिर वहीं जा रहूँगी। कल मैं यहाँसे जाती हूँ।"

स्वामीने बहुत देर तक चुपचाप बैठे रहनेके बाद कहा, "हाँ, इस समय तुम्हारा जाना ही उचित मालूम होता है। पर तुम अपने गहने वगैरह यहीं रखती जाना।"

यह सुनकर मैं अवाक् हो गई। मैं इतने हीन और इतने तुच्छ स्वामीकी स्त्री हूँ! इस जले मुँहपर अचानक हँसी आ गई। मैंने कहा, "अगर तुम मुझसे सब गहने छीन लेना चाहते हो तो अच्छी बात है, रखकर ही जाऊँगी।"

दीपकके क्षीण प्रकाशमें मैंने साफ देखा कि उनका चेहरा मानो पीला पड़ गया है। उन्होंने कहा, "नहीं, नहीं, मैं तुम्हारे कुछ गहने भिक्षाके रूपमें माँगता हूँ। मुझे इस समय रुपयोंकी सख्त ज़रूरत है, इसीलिए उन्हें गिरवी रखना पड़ेगा।"

लेकिन मैं भी ऐसी कमबख्त हूँ कि वह मुख देखकर भी उनकी इस बातपर विश्वास न कर सकी। मैंने कहा, "चाहे गिरवी रक्खो और चाहे बेच डालो, जो जी चाहो, करो। तुम्हारे गहनोंका मुझे ज़रा भी लोभ नहीं है।"

इतना कहकर मैंने तुरन्त ही अपना सन्दूक खोला और उसमेंसे सब गहने निकालकर बिछौनेपर फेंक दिये। जो दो कड़े माँने मुझे दिये थे उन्हें छोड़कर अपने शरीरपरके भी सब गहने मैंने उतार दिये। जब इससे भी मेरी तृप्ति न हुई, तब इन लोगोंने मुझे जो बनारसी साड़ियाँ और कपड़े आदि दिये थे, वे भी सब बाहर निकालकर फेंक दिये।

स्वामी पत्थरकी तरह स्थिर और अवाक् होकर बैठे रहे। मारे घृणा और अरुचिके मेरा मन इतना खराब हो गया कि अब उनके साथ एक कमरेमें रहना भी मेरे लिए असह्य हो गया। मैं कमरेसे बाहर निकल आई और बरामदेके एक कोनेमें जमीनपर अपना आँचल बिछाकर पड़ रही। उसी समय मुझे ऐसा जान पड़ा कि कोई दरवाजेकी आड़मेंसे निकलकर बाहर चला गया है।

मारे रुलाईके मेरी छाती फटने लगी। तो भी मैंने अपने मुँहमें कपड़ा ठूँस लिया और जी-जानसे रोनेकी आवाज़ रोककर अपने मानकी रक्षा की।

पता नहीं कि कब मुझे नींद आ गई। पर जब नींद खुली, तब देखा कि सबेरा हो गया है। अन्दर जाकर देखा तो बिछौना खाली पड़ा है और दो एक गहनोंको छोड़कर प्रायः सभी गहने अपने साथ लेकर वे न जाने कब वहाँसे चले गये हैं।

वे सारे दिन घर नहीं आये। रातके बारह बज गये, फिर भी उनकी सूरत न दिखाई दी।

जान पड़ता है कि तन्द्रामें भी मैं सजग थी। रातको दो बजेके बाद मुझे बागवाली खिड़कीपर खट् खट् शब्द सुनाई पड़ा। मैंने समझ लिया कि वह नरेन्द्र है। न जाने किस तरह मैं निश्चित रूपसे यह समझती थी कि आज रातको वह आवेगा। मैं समझती थी कि मुक्ता जाकर उसे यह खबर ज़रूर देगी कि मेरे स्वामी आज घर नहीं हैं; और ऐसा अच्छा मौका वह किसी तरह हाथसे न जाने देगा। किसी भावी अमंगलकी तरह मैं किसी तरह पहलेसे ही यह

अनुभव कर रही थी कि वह कहीं आसपास ही छिपा हुआ है। उस समय नरेन्द्र इतना निःसंशय था कि वह अनायास ही बोल उठा, "देर मत करो। जिस तरह हो, उसी तरह बाहर चली आओ। मुक्ता खिड़की खोलकर खड़ी है।"

बाग़ पार होकर, रास्तेके घोर अन्धकारसे निकलकर, मैं गाड़ीमें जाकर बैठ गई।—माँ वसुन्धरे! तुमने उस दिन इस अभागीको गाड़ीसमेत ही क्यों न निगल लिया!

कलकत्तेके बहू-बाजारके एक छोटेसे मकानमें जाकर जब मैं पहुँची, तब साढ़े आठ बज गये थे। मुझे वहाँ पहुँचाकर नरेन्द्र कुछ देरके लिए अपने डेरेपर चला गया। दासीने ऊपरवाले कमरेमें बिछौना बिछा रक्खा था। मैं किसी प्रकार लड़खड़ाती हुई वहाँ पहुँचकर लेट गई। आश्चर्य है कि जो बात कभी सोची भी नहीं थी, आज वही बात मेरी समस्त भावनाओंको दबाकर याद आने लगी। नौ बरसकी उम्रमें मैं एक बार पानीमें डूब गई थी। जब बहुत-से प्रयत्नोंके उपरान्त मुझे होश आया था, तब मैं अपनी माँका हाथ पकड़कर किसी तरह घर आकर बिछौनेपर पड़ रही थी। उस समय माँ मेरे सिरहाने बैठकर एक हाथ तो मेरे सिरपर फेर रही थी और दूसरे हाथसे मुझे पंखा झल रही थी। माताका वह मुख और पंखा लेकर हाथ हिलाना, इसके सिवा संसारमें मेरे लिए मानो और कुछ रह ही नहीं गया।

दासीने आकर कहा, "बहूजी, नलका पानी चला जायगा। उठकर स्नान कर लो।"

मैं जाकर स्नान कर आई। उड़िया ब्राह्मण भोजन परोस गया। याद आता है कि मैंने कुछ खाया भी। पर ज्यों ही खाकर उठी त्यों ही मुझे क़ै हो गई। इसके बाद फिर हाथ-मुँह धोकर निर्जीवकी भाँति बिछौनेपर लेट गई और शायद उसी समय मुझे नींद भी आ गई।

स्वप्नमें देखा कि मैं स्वामीके साथ झगड़ा कर रही हूँ। वे उसी प्रकार चुप-चाप बैठे हुए हैं और मैं अपने शरीरके गहने उतार उतारकर उनके ऊपर फेंक रही हूँ। लेकिन न तो वे गहने खत्म होनेको आते हैं और न मेरा उन्हें उतार-उतार कर उनके ऊपर फेंकना खत्म होता है। जितना ही मैं गहने फेंकती हूँ, उतना ही और गहने न जाने कहाँसे आ आकर मेरे शरीरपर लदते जाते हैं।

हठात् हाथके भारी अनन्तको उतारकर फेंकते ही वह उनके सिरपर जोरसे जाकर लगा और वे तुरन्त ही आँखें बन्द करके लेट गये। उनके उस फटे हुए

सिरमेंसे लहूकी धारें निकल-निकलकर छतकी धरनों और कड़ियों तक पहुँचने लगीं।

मैं नहीं कह सकती कि इस दशामें कितना समय बीत गया और कितना और बीत सकता था। जब आँखें खुलीं, तो देखा कि आँसुओंसे तकिया और बिछौने तर हो गये हैं।

मैंने आँखें खोलकर देखा कि अभी सन्ध्या होनेमें बहुत देर है और नरेन्द्र मेरे पास बैठा हुआ मुझे हिलाकर जगा रहा है।

उसने पूछा, "क्या तुम स्वप्न देख रही थीं? हैं, यह क्या हो रहा है!"

इतना कहकर उसने अपने दुपट्टेके छोरसे मेरा मुँह पोंछ दिया।

स्वप्न! पल भरमें ही मेरा मन मानो पूर्ण रूपसे स्वस्थ हो गया।

मैं आँखें मलती हुई उठकर बैठ गई। देखा कि सामने ही काग़ज़से बँधा हुआ एक बड़ा बंडल रक्खा है।

"यह क्या है?"

"तुम्हारे लिए कपड़े खरीद लाया हूँ।"

"तुम क्यों खरीदने गये?"

नरेन्द्रने ज़रा हँसकर कहा, "मैं नहीं खरीदूँगा तो और कौन खरीदेगा?"

*　　　*　　　*

उस दिन मैं जितनी रोई उतनी और कभी नहीं रोई। नरेन्द्रने कहा, "अच्छा बहन, अब तुम मेरे पैर छोड़कर उठ बैठो। मैं कसम खाकर कहता हूँ कि अब हम लोग एक माँके पेटसे पैदा हुए भाई-बहन हैं। तुमको मैं कितना ही प्यार क्यों न करूँ; फिर भी मैं सदा अपने आपसे तुम्हारी रक्षा करूँगा।"

मैंने कहा, "नहीं नहीं, नरेन्द्र भइया, तुम सदा रक्षा करनेकी बात छोड़ दो और मुझे ले चलकर उन्हींके पैरोंपर डालकर चले आओ। फिर जो कुछ मेरे भाग्यमें बदा होगा, हो जायगा। कल सारी रात मैं उन्हें नहीं देख सकी हूँ; अब अगर आज भी सारी रात न देख पाऊँगी, तो मर जाऊँगी।"

दासी कमरेमें रोशनी कर गई। नरेन्द्र वहाँसे उठकर एक मोढ़ेपर जा बैठा और बोला, "मुक्तासे मैं सब हाल सुन चुका हूँ। यदि उनके प्रति तुम्हारा इतना ही अधिक प्रेम है, तो फिर तुम क्यों उनके साथ एक दिन भी—"

मैंने जल्दीसे उसे बीचमें ही रोककर कहा, "तुम मेरे बड़े भाई हो। मुझसे ये सब बातें मत पूछो।"

नरेन्द्र कुछ देर तक चुपचाप बैठे रहनेके बाद बोला, "मैं आज ही तुम्हें तुम्हारे बागके पास छोड़ सकता हूँ; परन्तु क्या अब भी वे तुम्हें ग्रहण करेंगे? यदि नहीं, तो फिर गाँवमें तुम्हारी क्या दुर्दशा होगी, बोलो?"

मुझे ऐसा जान पड़ा कि किसीने दोनों हाथोंसे मेरा कलेजा पकड़कर मसोस डाला, लेकिन तत्काल ही मैंने अपने आपको सँभालकर कहा, "यह जानती हूँ कि अब वे मुझे अपने घरमें नहीं रखेंगे; पर फिर भी इसमें ज़रा भी सन्देह नहीं है कि वे मुझे माफ कर देंगे। भइया, मैंने स्वयं उन्हींके मुँहसे सुना है कि चाहे कितना ही बड़ा अपराध हो, यदि उनसे शुद्ध हृदयसे क्षमा माँगी जाय तो फिर उनके पास क्षमा करनेके सिवा और कोई उपाय ही नहीं है। बस नरेन्द्र भइया, तुम मुझे उनके पैरोंके पास रखकर चले आओ। मैं शुद्ध हृदयसे भगवानसे प्रार्थना करती हूँ कि वे तुम्हें राजेश्वर करें।"

सोचा था कि अब मैं नहीं रोऊँगी। लेकिन फिर-भी मैं किसी प्रकार अपने आँसू न रोक सकी, वे फिर झर-झर बहने लगे। कोई मिनट-भर चुप रहनेके बाद नरेन्द्रने कहा, "सौदामिनी, क्या तुम सचमुच ही भगवानको मानती हो?"

उस दिन उस चरम दुःखके समय मेरे मुँहसे परम सत्य निकल गया। मैंने कहा, "हाँ, मानती हूँ। भगवान् हैं, इसीलिए तो मैं इतना सब कुछ होनेपर भी फिर लौट जाना चाहती हूँ। नहीं तो भइया नरेन्द्र, मैं इसी जगह अपने गलेमें फाँसी लगाकर मर जाती, जानेका नाम भी न लेती।"

नरेन्द्रने कहा, "लेकिन मैं तो नहीं मानता।"

मैं जल्दीसे बोल उठी, "पर मैं कहती हूँ कि मेरी तरह तुम भी एक दिन अवश्य मानोगे।"

"जब वह समय आवेगा, तब देखा जायगा।"

नरेन्द्र इतना कहकर और गम्भीर होकर बैठ रहा। यह जानकर कि वह मन ही मन कुछ सोच रहा है, मैं व्याकुल हो उठी। एक मिनटकी देरी भी असह्य हो रही थी। मैंने कहा, "नरेन्द्र भइया, मुझे कब रख आओगे?"

नरेन्द्रने सिर उठाकर धीरे धीरे कहा, "लेकिन वे कभी तुम्हें अपने घरमें न रखेंगे।"

"भाई, तुम इस बातकी चिन्ता क्यों करते हो? रखें या न रखें, यह उनकी इच्छा है। पर यह बात मैं निश्चित रूपसे कह सकती हूँ कि वे मुझे क्षमा अवश्य कर देंगे।"

"क्षमा! यदि घरमें न रखा तो क्षमा करना और न करना दोनों ही बराबर हैं। फिर बतलाओ कि उस समय तुम कहाँ जाओगी? ज़रा एक बार यह भी अच्छी तरह सोच देखो कि उस समय सारे गाँवमें कितना हो-हल्ला मचेगा और कितनी बदनामी होगी?"

मैंने रोते हुए कहा, "भइया, तुम इस बातकी ज़रा भी चिन्ता न करो। उस समय वही मेरा कोई न कोई उपाय कर देंगे।"

नरेन्द्रने फिर कुछ देर तक चुप रहकर कहा, "तुम्हारा तो कोई उपाय कर देंगे, पर मेरा तो न करेंगे? मेरा क्या होगा?"

मेरी समझमें न आया कि इस बातका क्या उत्तर दूँ। तो भी कहा, "तुम्हें भय ही किस बातका है?"

नरेन्द्रने अपने म्लान मुखपर जबर्दस्ती कुछ हँसी लाकर कहा, "भय! भय कोई ऐसा बहुत बड़ा नहीं है, सिर्फ़ पाँच-सात बरसके लिए जेल जाना पड़ेगा! अगर पहलेसे जानता कि अन्तमें तुम मुझे इस तरह डुबाओगी, तो मैं इसमें हाथ ही न डालता। तुम्हारे मनमें ज़रा भी स्थिरता नहीं है, यह कोई लड़क-खेलवाड़ है?"

मैं फिर रोकर बोली, "तो फिर मेरा और क्या उपाय होगा? जब तक मैं अपने समस्त अपराध उनके निकट बैठकर निवेदन न कर लूँगी, तब तक मैं किसी तरह बच ही नहीं सकती।"

नरेन्द्रने खड़े होकर कहा, "तुम अपनी ही बात सोचती हो, पर मेरी विपत्तिका खयाल नहीं करतीं। अब मैं सब बातोंको सब तरफसे सोचे-समझे बिना कोई काम नहीं कर सकता।"

"यह क्या, तुम अपने डेरेपर जा रहे हो?"

"हाँ।"

मारे क्रोध और दुःखके मैं जमीनपर लोट गई और अपना सिर पीट-पीटकर रोने लगी, "तुम मेरे साथ न जाओ तो यहींसे मेरे भेजनेका इन्तजाम कर दो, मैं अकेली ही चली जाऊँगी। देखो, मैं उनकी क़सम खाकर कहती हूँ कि मैं किसीका नाम नहीं लूँगी—मैं किसीको विपत्तिमें नहीं डालूँगी।

सारा दण्ड अकेले ही सिर झुकाकर भोगूँगी। नरेन्द्र भइया, मैं तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ, मुझे रोक रखकर मेरा और अधिक सर्वनाश मत करो।"

मैंने सिर उठाकर देखा तो नरेन्द्र वहाँ मौजूद ही नहीं है, दबे पाँव खिसक गया है। मैं दौड़ी हुई सदर दरवाजेपर पहुँची तो देखा कि ताला बन्द है। उड़िया ब्राह्मण बोला, "बाबूजी ताली अपने साथ लेते गये हैं। कल सबेरे आकर खोले देंगे।"

लौटकर फिर कमरेमें चली आई और जमीनपर लोट-लोटकर रोती हुई कहने लगी, "भगवान्, पहले कभी तुम्हें नहीं पुकारा, पर आज पुकारती हूँ। तुम अपनी इस नितान्त निरुपाय और महापापिष्ठा सन्तानकी गति कर दो।"

मेरी वह पुकार कितनी प्रचंड थी और उसकी शक्ति कितनी दुर्निवार थी, उसे आज केवल मैं ही जानती हूँ।

फिर-भी सात दिन कट गये। परन्तु किस प्रकार कटे, यह वर्णन करनेकी न तो मुझमें शक्ति है और न धैर्य ही।

तीसरे पहर मैं मकानके ऊपरवाले कमरेकी खिड़कीमें बैठी हुई नीचे गलीकी तरफ देख रही थी। आफिसोंमें छुट्टी हो गई थी, बाबू लोग दिन-भर मेहनत करनेके बाद दौड़े हुए अपने अपने घरोंकी तरफ जा रहे थे। उनमेंसे अधिकांश साधारण गृहस्थ ही थे। उनके घरोंका दृश्य स्पष्ट रूपसे मेरी आँखोंके सामने फिरने लगा। जब मुझे यह ध्यान आया कि इस समय उनके घरकी स्त्रियोंमें कौन सबसे अधिक काममें लगी होगी, जल-पान और चाय वगैरहकी तैयारी करनेमें कौन सबसे अधिक दौड़-धूप कर रही होगी, तब मेरा कलेजा धड़क उठा। मैं सोचने लगी कि दिन भरके जी-तोड़ परिश्रमके बाद, वे भी इस समय लौटकर घर आये होंगे। धोती कहाँ है, अँगोछा कहाँ है, जल कहाँ है, यह बार बार पूछने पर भी शायद किसीने जवाब न दिया होगा। इसके बाद शायद मँझले देवरके जल-पानके साथ मँझली देवरानीने उनके जल-पानकी भी थोड़ी-बहुत व्यवस्था कर दी होगी। और यह भी हो सकता है कि वह उनके लिए व्यवस्था करना बिलकुल भूल ही गई हो। मैं तो वहाँ हूँ नहीं, भूल जानेमें डर ही किसका है? सम्भव है कि वे केवल एक गिलास जल पीकर ही रह गये हों और अपनी धोतीसे मैला बिछौना झटककर उसीपर लेट गये हो। इसके बाद आधी रातके समय उन्हें ज़रा-सा सूखा हुआ भात और उबाला हुआ आलू मिल गया होगा। सबेरेकी दाल अगर थोड़ी-बहुत बच रही होगी तो

वह मिल जायगी और अगर न बची होगी तो वह भी न मिलेगी। सब लोगोंको देने दिलानेके बाद अगर थोड़ा दूध बच गया होगा तो उनका परम सौभाग्य ही समझना चाहिए। वे निरीह भले आदमी हैं। किसीसे कोई कड़ी बात कह नहीं सकते—किसीपर क्रोध करना जानते नहीं।

—अरे महापातकिनी! क्या संसारमें और भी किसीने कभी तुझसे बढ़कर ऐसा निष्ठुर महापाप किया है? जीमें आया कि इसी समय जंगलेकी लोहेकी छड़ोंमें अपना गला फँसाकर इन समस्त भावनाओं और चिन्ताओंका यहीं अन्त कर दूँ।

मैं समझती हूँ कि उस समय बहुत देरतक और किसी ओर मेरी दृष्टि ही नहीं थी, अचानक कड़ी खटखटानेके शब्दसे चौंककर देखा तो सामने नरेन्द्र और मुक्ता दोनों खड़े हैं। मैं जल्दीसे अपनी आँखें पोंछकर जमीनपर बिछे हुए बिछौनेपर आकर बैठ गई। उस दिनसे नरेन्द्र फिर नहीं आया था। उसने निःसंशय होकर समझ लिया था कि मेरा मन पूरी तरहसे किस तरफ लगा हुआ है और इस भयसे वह इस ओर पैर भी नहीं रखता था। उसे विश्वास हो गया था कि विपत्ति पड़नेपर मैं अपने स्वामीके विरुद्ध उसका कोई उपकार न कर सकूँगी। इसीलिए उसे जितना भय हुआ था, उतना ही क्रोध भी हुआ था। कमरेमें घुसते ही वे दोनों मुझे देखकर चौंक पड़े। नरेन्द्रने कहा, "जब तुम्हारी तबीयत इतनी खराब हो गई थी, तब मुझे खबर क्यों नहीं दी? तुम्हारा ब्राह्मण तो मेरा मकान जानता है?"

दासी दालानमें झाड़ू दे रही थी, चट बोल उठी, "तबीयत खराब क्यों न होगी? खाली पानी पीकर रहनेसे और क्या होगा? मैं तो दोनों बेला देखती हूँ कि भातकी थाली जिस तरह परोसकर सामने रखी जाती है, उसी तरह पड़ी रहती है। कई दिन तो थालीको हाथ भी नहीं लगाया है।"

यह सुनकर दोनों आदमी स्तब्ध होकर मेरी तरफ देखने लगे।

जब सन्ध्याके बाद नरेन्द्र अपने घर चला गया, तब मैंने मुक्ताको अपनी छातीके पास खींचकर पूछा, "वे कैसे हैं?"

मुक्ता रो पड़ी और बोली, "बहूजी, भाग्यके आगे किसीका कोई बस नहीं। नहीं तो क्या ऐसा सोने-सा मालिक पाकर भी तुम उसके साथ सुखसे न रह सकतीं?"

"मुक्ता, तूने ही तो उनके साथ सुखसे नहीं रहने दिया।"

मुक्ताने आँसू पोंछकर कहा, "अब मैं क्या तुमको बतलाऊँ कि उन सब

बातोंका ध्यान आनेपर मेरे कलेजेके अन्दर क्या होने लगता है। अब भी बाबूजीको छोड़कर बाकी और सभी लोग यही समझते हैं कि अपने घरके जल जानेकी खबर सुनकर ही तुम लड़-झगड़कर रातको अपने मैके चली गई हो। तुम्हारी सास तो इसी बातपर बहुत सख्त नाराज़ है कि इसके लिए उसका हुक्म क्यों नहीं लिया गया, और इसीलिए उसने उनके साथ बोल-चाल तक छोड़ दिया है।—वह औरत भी ऐसी पाजी है कि मैं क्या कहूँ। वह बाबूजीको जो जो कष्ट देती है उसे देखकर पत्थरका कलेजा भी टुकड़े टुकड़े हो जाता है। और नहीं तो बहूजी, क्या तुम सिर्फ़ शौकसे उसके साथ झगड़ा करती थीं ?"

"अब तो मेरा लड़ाई-झगड़ा सदाके लिए खत्म हो गया है," यह कहते-कहते सचमुच मुझे ऐसा जान पड़ा कि मेरा दम घुट रहा है।

आज मुक्तासे मैंने सुना कि मेरे जले हुए मकानकी मरम्मत हो रही है और इसके लिए उन्होंने रुपये दिये हैं। शायद इसीलिए उस दिन उन्हें अचानक मेरे जेवर रेहन रखनेकी आवश्यकता हुई थी।

मैंने कहा, "मुक्ता, कहो, सब कह डालो। मेरे कलेजेको टुकड़े-टुकड़े कर देनेवाली जितनी खबरें हों वे सब एक एक करके मुझे सुना दो। इस विषयमें तुम मुझपर ज़रा भी दया न करो।"

मुक्ताने कहा, "उन्हें इस घरका भी पता मालूम है—"

मैंने सिहिरकर पूछा, "कैसे मालूम हुआ ?"

मुक्ता बोली, "आजसे महीने-भर पहले जब यह मकान तुम्हारे लिए किरायेपर लिया गया था, तब मुझे मालूम हो गया था।"

"फिर क्या हुआ ?"

"एक दिन जब मैं नदीके किनारे छिपकर नरेन्द्रसे बातें कर रही थी, तब उन्होंने अपनी आँखोंसे हम लोगोंको देख लिया था।"

"फिर क्या हुआ ?"

"बहूजी ब्राह्मणके पैर छूकर मुझसे झूठ नहीं बोला गया। इसलिए वहाँसे चले आनेके दिन मैं इस मकानका पता बतला आई।"

मैं मुक्ताकी गोदमें ही सिर रखकर और आँखें बन्द करके लेट गई।

बहुत देर बाद मुक्ताने पुकारा "बहूजी !"

"क्या है मुक्ता !"

"यदि वे तुम्हें ले जानेके लिए स्वयं ही आ जावें तो ?"

मैंने उठकर पूरी ताकतसे मुक्ताका मुँह बन्द करते हुए कहा, "नहीं मुक्ता, मैं तुझे यह बात न कहने दूँगी। मुझपर जो दुःख पड़ा है, वह मुझे होश-हवासमें ही सहने दे। पागल करके मेरे प्रायश्चित्तका मार्ग मत बन्द कर दे।"

मुक्ताने ज़ोर करके अपना मुँह छुड़ा लिया और कहा, "बहूजी, आखिर मुझे भी तो प्रायश्चित्त करना पड़ेगा। अपने पापोंको रुपयोंके साथ तौलकर तो मैं घरमें रख नहीं सकूँगी।"

इस बातका कोई उत्तर दिये बिना ही मैं आँखें बन्द करके लेट गई। मन ही मन बोली—अरे मुक्ता, यह पृथ्वी अभी तक पृथ्वी ही है। आकाश-कुसुमकी बातें सिर्फ कानोंसे सुनी जाती हैं। आजतक किसीने उसे फूलते हुए नहीं देखा।

कोई घण्टेभर बाद जब मुक्ता नीचेसे भोजन करके आई, तब रातके दस बज गये थे। उसने कमरेमें पैर रखते ही कहा, "बहूजी, सिरपर आँचल खींच लो, बाबूजी आ रहे हैं।" और इतना कहकर ही वह बाहर चली गई।

"फिर इतनी रातको आ गये ?" जल्दीसे सिरपर कपड़ा खींचके ज्यों ही मैं उठकर बैठी, त्यों ही देखा कि दरवाजेपर नरेन्द्र नहीं बल्कि मेरे स्वामी खड़े हैं !

उन्होंने कहा, "तुम्हें कुछ भी कहनेकी जरूरत नहीं। मैं जानता हूँ कि तुम मेरी ही हो। चलो, घर चलो।"

मैंने मन ही मन कहा, "भगवन्, जब तुमने मुझपर इतनी कृपा की है, तो फिर एक कृपा और करो कि जब तक मैं इनके पैरोंपर अपना सिर न रख लूँ, कमसे कम तब तकके लिए तो मुझे होशमें रहने दो।"

समाप्त

वैकुण्ठका दान-पत्र

१

पाँच छह वर्ष पहले बाबूगंजके वैकुण्ठ मजूमदारकी दूकान जब अनेक प्रकारकी आपत्तियाँ विपत्तियाँ सहकर भी टिकी रह गई तब बहुत-से लोगोंने आश्चर्य प्रकट किया। क्योंकि यह किसीको भी मालूम नहीं हुआ कि वैकुण्ठने किस प्रकार उसे सँभाल लिया। तबसे दूकान धीरे धीरे उन्नतिके मार्गपर ही अग्रसर हो रही है।

इसके बाद हालत सुधर गई, वैसा कोई दुःख-कष्ट न रहा; फिर भी वैकुण्ठने जब अपने बड़े लड़के गोकुलको स्कूलसे हटाकर दूकानपर बैठा लिया, तब भी मुहल्ले टोलेके दस-बीस आदमियोंको कुछ कम आश्चर्य नहीं हुआ। वे लोग वैकुण्ठके आचरणके सम्बन्धमें बात-चीत करते हुए कहने लगे—देखा बूढ़ेका व्यवहार! संभव है बड़ा लड़का उतना तेज न हो, इससे एक साल और दरजेमें पास न हो सका हो, पर क्या इसीसे उसका स्कूल छुड़ा देना चाहिए? यदि उसकी माँ जीती होती तो क्या वह ऐसा कर सकता? जरा अपने छोटे लड़के विनोदका तो स्कूल छुड़ाकर देखे, छोटी मालिकिन झाड़ू मारकर सारा विष झड़ा देंगी।

वास्तवमें गोकुल पढ़ने लिखानेमें तेज नहीं था। दरजेमें वह कभी अपना पाठ अच्छी तरह सुना ही नहीं सकता था। परीक्षाका फल निकलते ही वह बहुत उदास होकर अपनी विमाताके पास आकर रो पड़ा।

विमाताने उसे खींचकर अपनी गोदमें ले लिया और स्नेहपूर्वक उसके सिर-पर हाथ फेरते हुए प्रेमपूर्ण स्वरमें कहा, "बेटा गोकुल, आदमीको जीवनमें इस तरहके सैकड़ों दुःख सहने पड़ते हैं। जो लड़का अपने मनका कष्ट हँसते हँसते सह लेता है और फिर प्रयत्न करता है, वही लड़का लायक होता है। रोओ मत बेटा, फिर मन लगाकर पढ़ो। अगले साल पास हो जाओगे।"

इतनेमें छोटा लड़का विनोद भी उछलता कूदता घर आ पहुँचा। वह गोकुलसे छह वर्ष छोटा था और स्कूलमें भी तीन चार दरजे नीचे था। लेकिन

वह दरजेमें अव्वल आया और एक साथ ही दो दरजे चढ़ा दिया गया। यह शुभ समाचार सुनकर माँने उसे भी खींचकर अपनी गोदमें बैठा लिया और पुलकित चित्तसे असंख्य आशीर्वाद दिये।

सन्ध्याको वैकुण्ठ दूकानका काम खतम करके बही-खाते बगलमें दबाये हुए घर आये और उन्होंने अपने दोनों लड़कोंका हाल सुना, पर भला-बुरा कुछ भी नहीं कहा। लड़कोंका सारा भार उनकी माँपर छोड़कर ही वे निश्चिन्त थे। वे हाथ-मुँह धोकर, जल-पानकर, पान चबाते चबाते निश्चिन्त होकर नित्यके नियमके अनुसार अपना बही-खाता देखने लगे।

२

उसी दिन सन्ध्याको स्कूलके छठे शिक्षक वृद्ध जयलाल बनर्जी अपनी लाठी खटखटाते और यह कहते हुए वैकुण्ठ मजूमदारके मकानके अन्दर आ पहुँचे—अरे बेटी भवानी कहाँ है ! वैकुण्ठकी दूकानके उनकी तरफ चावल, दाल, घी और तेल आदिके मद्धे काफी रुपये बाकी पड़े थे, शायद इसीसे उन्होंने घरकी मालिकिनको 'बेटी' सम्बोधनसे पुकारा।

भवानी सन्ध्याका सब काम-काज समाप्त करके बरामदेमें चटाई बिछाकर दोनों लड़कोंको लिये बैठी थी। वह अत्यन्त व्यस्त होकर उठ खड़ी हुई और उसने चट एक आसन लाकर बिछा दिया। बनर्जी महाशयने बैठते ही चिकनी चुपड़ी बातें आरम्भ कर दीं। "हाँ बेटी, तुम सच्ची रत्नगर्भा हो। कैसे अच्छे लड़केको तुमने जन्म दिया है ! इतने लड़कोंमें तुम्हारा विनोद बिलकुल फर्स्ट हुआ और एक साथ दो दरजे चढ़ा दिया गया। उसके इतने ज्यादा नम्बर देखकर हेडमास्टर तकने दाँतों उँगली दबा ली। उन्हें भी मारे आश्चर्यके गालपर हाथ रखकर रह जाना पड़ा। और मैं भी तो बेटी, इन लड़कोंको पढ़ाते लिखाते ही बूढ़ा हुआ हूँ। लेकिन तुम्हारे विनोदके जोड़का लड़का मैंने आज तक कभी आँखों नहीं देखा। मैं आज तुम्हें बतलाये देता हूँ कि तुम्हारा यह लड़का हाईकोर्टका जज होगा—जरूर होगा।"

भवानी चुपचाप सुनती रही। बनर्जी महाशय और भी उत्साहित होकर कहने लगे, "और यह गोकुला ! कहाँ वह और कहाँ यह ! यह लड़का इतना गधा है कि न पूछो बात। इम्तिहानके दिन मैं ही तो इन लोगोंपर पहरा दे

रहा था। कितने ही लड़कोंने टेबुलके नीचे किताबें खोलकर खूब मजेसे नकल की। खुद इसीके दाहिने बाएँ मल्लिक घरानेके दो लड़के नक़ल कर रहे थे। मैंने देखकर भी नहीं देखा। बल्कि इस कम्बख्तको एक बार आँख दबाकर इशारा भी किया। पर फिर-भी यह बोदे बैलकी तरह चुपचाप बैठा रहा—इसने एक बार आँख उठाकर भी किसी तरफ न देखा। और नहीं तो आशु मल्लिकके लड़के तो पास हो गये और यह पास न होता! तुम ज़रा एक बार इसीसे पूछ देखो कि मैं ठीक कहता हूँ या ग़लत!"

इतना कहकर मास्टर जयलालने अपनी लाठी उठाकर सहसा गोकुलको मारनेका-सा संकेत किया और इतनेसे ही किसी प्रकार लड़कोंको मारने-पीटनेकी अपनी वह वृत्ति शान्त की, जो उनकी हड्डियों और मज्जातकमें घुसी हुई थी। परन्तु गोकुल मारे भयके सिहिर उठा। पल-भरमें ही भवानीने दोनों हाथ बढ़ाकर उस अपने सौतेले लड़केको खींचकर कलेजेसे लगा लिया। गोकुलकी माँ नहीं थी। उसे अपनी माँकी याद भी नहीं थी। इस विमाताके पास रहकर ही वह इतना बड़ा हुआ है। आज भी स्कूलसे लौटकर रोता रोता वह जबसे उसके पास आया था, तभीसे उसने फिर उसे अपने पाससे अलग नहीं होने दिया था और तभीसे दोनोंमें गुपचुप यही बातें हो रही थीं। गोकुलके सिर और चेहरेपर धीरे धीरे हाथ फेरते हुए भवानीने स्नेहपूर्ण और मृदु स्वरसे कहा, "हाँ बेटा, सब लड़के पुस्तकमेंसे नकल कर रहे थे, सिर्फ़ तुम्हींने किसी तरफ आँख उठाकर देखा भी नहीं?"

गोकुल कुछ भी न कह सका और अपनी अयोग्यताका इसे भी एक बहुत बड़ा प्रमाण समझकर मारे लज्जाके उसने चुपचाप अपना सिर झुका लिया। परन्तु जब यह बात-चीत घरके भीतर वैकुण्ठके कान तक पहुँची, तब वे बहीखातेपरसे सिर उठाकर सुनने लगे।

भवानीने मृदुतापूर्वक हँसकर कहा, "अगर इस साल खूब मन लगाकर पढ़ेगा, तो अगले साल यह भी फर्स्ट हो जाएगा।"

विमाताका यह स्नेहपूर्ण कण्ठस्वर बनर्जी महाशय नहीं पहचान सके। सौतके लड़केके प्रति स्त्रियोंका विद्वेष उनके निकट ऐसा स्वतःसिद्ध सत्य था कि उनके मनमें यह बात आ ही नहीं सकी कि कभी किसी क्षेत्रमें इसका व्यतिक्रम भी हो सकता है। उन्होंने इसमें भवानीकी कोरी मौखिक शिष्टता समझकर 'गोकुल' को और भी अधिक तुच्छ सिद्ध कर दिखानेके अभिप्रायसे जीभ और तालुके

संयोगसे एक प्रकारका शब्द उत्पन्न करके कहा—"हा हा! गोकुला होगा फर्स्ट! पूरबका सूर्य उदय होगा पच्छममें! जो फर्स्ट होगा बेटी, वह तुम्हारी बाईं तरफ बैठा सुन रहा है।"

इतना कहकर बनर्जीने उँगलीसे विनोदकी ओर इशारा किया और हठात् थोड़ी-सी सूखी हँसीकी कलई चढ़ाकर कहा, "फिर-भी क्या इस लड़केको कुछ लज्जा शरम है! उलटा लड़कोंसे बड़ी शेखीसे यह कह रहा था कि 'मैं नहीं पास हुआ तो क्या! मेरा छोटा भाई तो फर्स्ट हुआ है! बताओ तो सही, तुम लोगोंमेंसे किसके भाईने इस प्रकार डबल प्रमोशन पाया है?' बेटी, सुनो तो इसकी बातें! छोटा भाई फर्स्ट हुआ, इसपर कहाँ तो इसे लज्जाके मर जाना चाहिए और कहाँ उलटे इस तरहकी शेखी बघार रहा था। देखो तो इसका गर्व!"

अब भवानीसे नहीं रहा गया। उसने गोकुलको और भी पास खींचकर उसके मस्तकको छातीसे चिमटा लिया। गोकुल लज्जासे मर गया और माँकी गोदमें मुँह छिपाकर चुपचाप बैठा रहा। गोकुल अपने छोटे भाईके साथ कितना स्नेह करता है यह वह जानती थी।

बनर्जी महाशय और भी कुछ चुनी हुई बातें कहकर भवानीको यह जतलाना चाहते थे कि अभीसे घरपर एक अच्छा मास्टर रखकर विनोदको अच्छी तरह पढ़ानेकी आवश्यकता है, परन्तु उसी समय अचानक पासके कमरेसे रोशनीकी एक झलक माता-पुत्रपर आकर पड़ गई जिससे उनके मनमें कुछ खटका हो गया। भवानी जिस तरहसे अपने निर्बोध सौतेले पुत्रको कलेजेसे लगाकर उसके सिरपर हाथ फेर रही थी, वह ठीक जैसा होना उचित था वैसा नहीं था! इससे उन्हें सन्देह हो गया और वे यह निश्चय न कर सके कि इस तुलनामूलक समालोचनाको अब और आगे बढ़ाना ठीक होगा या नहीं। अतः उन्हें दूसरी बात छेड़ देनी पड़ी।

भवानी अब तक प्रायः चुपचाप बैठी हुई ही सुन रही थी। अब भी उसने और कोई बात नहीं कही। अन्तमें रात अधिक होती जा रही है, कहकर बनर्जी महशय अनेक प्रकारके आशीर्वाद देते हुए और भविष्यमें बार बार निस्संदेह रूपसे विनोदके जज होनेकी सम्भावना बतलाते हुए लाठीके सहारे उठकर खड़े हो गये। उधर कमरेमें बैठे हुए वैकुण्ठ मानो ठीक इसी समयकी प्रतीक्षा कर रहे थे। उन्होंने सामने पहुँचकर कठोर स्वरमें पूछा, "हाँ रे

गोकुला, जब सभी लड़के किताबसे नकल कर करके पास हो गये तब तूने ही नकल क्यों नहीं की ?"

गोकुल मारे भयके पहलेकी ही तरह मुँह छिपाये बैठा रहा। बहुत-कुछ डराये धमकाये जानेपर अन्तमें जो कुछ कहा, उसका सारांश यह था कि एक दिन पहले ही हेडमास्तर साहब आकर मना कर गये थे कि कोई लड़का चोरीसे नकल-वकल न करे।

वैकुण्ठ पहले तो चुपचाप थोड़ी देर तक खड़े रहकर कुछ सोचते रहे और तब बोले, "अच्छा, अब कलसे तुम्हारा स्कूल जाना बन्द। मेरे साथ दूकान चला करो।"

इतना कहकर वैकुण्ठ फिर अपने कमरेमें जाकर बैठ गये और काममें लग गये। भवानीने यह समझकर कि यह बात गोकुलके लिए साधारण ताड़नाके रूपमें कही गई है उस समय कुछ न कहा। पर दूसरे दिन सबेरे जब वैकुण्ठने गोकुलको सचमुच अपने दूकान ले जाना चाहा, तब भवानीने बहुत गरम होकर और घोर आपत्ति करते हुए कहा, "भला यह भी कोई बात है! दूध-पीता बच्चा जायगा तुम्हारी दूकान चलाने? ऐसा नहीं हो सकता। अपने जीते जी मैं गोकुलको पढ़ना-लिखना नहीं छोड़ने दूँगी। ऐसा गुस्सा तो मैंने कहीं देखा नहीं!"

इतना कहकर भवानी क्रोधके आवेशमें लड़केको खींचे लिये जाती थी कि वैकुण्ठने कुछ मुस्कराकर कहा, "आखिर गुस्सा किया किसने है?"

भवानीने कहा, "तुमने और किसने?"

"मुझे और भी कभी गुस्सा करते देखा है?"

"तो फिर तुम यह कैसी बात कर रहे हो? लड़कपनमें सभी पास-फेल हुआ करते हैं। क्या इसीलिए स्कूल छुड़ा देना चाहिए?"

तब वैकुण्ठने गोकुलको वहाँसे हटा दिया और हँसते हुए कहा, "सुनो, मैंने गुस्सा नहीं किया। बल्कि मैं तो तुम्हारे बड़े लड़केको बहुत प्रसन्न होकर अपने साथ दूकान लिये जा रहा हूँ। बनर्जी महाशयकी तरह मैं तुम्हें यह विश्वास नहीं दिला सकता कि तुम्हारा छोटा लड़का किसी समय जज हो सकेगा या नहीं, परन्तु यह बात निश्चित रूपसे कहे देता हूँ कि मेरे न रहनेपर तुम गोकुलके भरोसे ही निर्भय और निश्चिन्त होकर रह सकोगी।"

स्वामीके न रहनेकी बात सुनते ही भवानीकी आँखोंके कोने पल भरके लिए

आर्द्र हो गये। वह बोली, "मैं यह जानती हूँ। लेकिन मेरा गोकुल बहुत ही सीधा है। यह क्या तुम्हारे व्यवसायके दाँव-पेंच समझ सकेगा? मैं तो समझती हूँ कि इसे जो पावेगा, वही ठग लेगा।"

वैकुण्ठने हँसकर कहा, "सब लोग तो उसे नहीं ठगेंगे, हाँ, कुछ लोग अवश्य ठग लेंगे। मगर वह तो किसीको न ठगेगा? बस यही बहुत है। तब लक्ष्मीजी उसके हाथमें अपने आप आ जायँगी।"

यह कहते कहते स्वयं वैकुण्ठकी आँखोंमें भी जल भर आया। स्वयं भी वे बहुत साफ आदमी थे, पर पूँजीके अभावमें उन्होंने बहुत दिनों तक अनेक कष्ट भोगे थे। इस समय यद्यपि उन्होंने कुछ संग्रह तो अवश्य कर लिया है पर अब समय भी निकट आ गया है और पहलेकी-सी शक्ति भी अब नहीं रह गई है। उन्होंने जल्दीसे अपनी आँखोंपर हाथ फेर लिया और हँसकर कहा, "सुनती हो, इस उम्रमें गोकुलने जितने बड़े लोभसे अपनेको बचा लिया है, शायद तुम न समझ सकोगी कि वह लोभ कितना प्रबल है। जो इतना कर सकता है, समझ लो कि व्यवसायके दाँव-पेंच रुपयेमें चौदह-आने तो उसके सीखे-सिखाये हैं। सिर्फ़ जो दो आना बाकी हैं, वह मैं उसे और सिखा जाऊँगा"

"लेकिन आखिर लोग क्या कहेंगे?"

"और लोगोंकी बात तो मैं जानता नहीं, मैं तो खाली अपनी ही बात जानता हूँ। मैं जानता हूँ कि उसके हाथ तुम लोगोंको सौंपकर मैं निश्चिन्त होकर आँखें बन्द कर सकूँगा।"

भवानी स्वयं भी उधर कुछ दिनोंसे देख रही थी कि स्वामीका स्वास्थ्य दिनपर दिन ख़राब होता जा रहा है। उनकी अन्तिम बात सुनते ही वह निकट विपत्तिका अनुभव-सा करके रोती हुई बोली, "अच्छा तो ले जाओ।"

इतना कहकर भवानी स्वयं दूसरे कमरेमें जाकर गोकुलको बुला लाई और उसे उसने अपने स्वामीके हाथ सौंप दिया। फिर चलते समय उसका मुँह चूमकर कहा, "जाओ बेटा, अपने बाबूजीके साथ दूकान जाओ। तुम्हारे योग्य होनेपर ही हम लोग टिक सकेंगे।"

गोकुल पिता और माताके मुखकी ओर देखकर विस्मित हुआ। उस बेचारेने कल रातको ही बिछौनेपर पड़े पड़े प्रतिज्ञा की थी कि इस साल चाहे जैसे हो मैं अवश्य पास होऊँगा। स्कूल छोड़कर दूकान जानेमें कभी किसी लड़केने अपना गौरव नहीं समझा। गोकुलने भी नहीं समझा। किन्तु उसने

माताकी आज्ञाके विरुद्ध कभी कोई काम किया ही नहीं था। सहपाठियोंके ताने उसके कानोंमें बजने लगे परन्तु फिर-भी उसने कोई उज्र न किया— चुपचाप पिताके पीछे दूकान चला गया।

३

दस बरस बीत चुके, वैकुण्ठ बहुत बूढ़े हो गये हैं और मरनेके किनारे पहुँच गये हैं। परन्तु उनके मकानकी ओर देखनेसे ही पता चल जाता है कि गोकुलके सम्बन्धमें उन्होंने कोई भूल नहीं की थी। अब गंजमें उनकी वह मोदीकी दूकान नहीं है, बल्कि उसके बदले थोक माल बेचनेकी बहुत बड़ी कोठी और आढ़त है, जहाँ लाखों रुपयोंका कार-बार होता है। विनोद कलकत्तेमें रहकर एम० ए० में पढ़ता है। वैकुण्ठ पोते-पोतियोंका मुख देख-कर परम सुखसे मर सकते थे, पर इधर कुछ दिनोंसे उनके छोटे लड़केके सम्बन्धमें नाना प्रकारकी कुत्सित जन-श्रुतियाँ फैल रहीं हैं; जिससे उनके जीवनके अवशिष्ट दिन बहुत ही भारी हो उठे हैं।

उस दिन सबेरे वैकुण्ठको जीवनकी अन्तिम पुकार सुनाई पड़ी। उनके सारे शरीरमें एक नवीन प्रकारकी व्यथा होने लगी, जिससे उन्होंने अपनी स्त्रीको अपने पलंगके पास बुलाकर कुछ म्लान भावसे ज़रा-सा हँसकर कहा, "देखो, अब मेरा समय आ गया, इस लिए मैं कुछ पहले ही चला जा रहा हूँ। जब तक मेरे पास न आ सको, तब तक मेरे दोनों लड़कोंकी देख-भाल करना। मैं तुम्हारे ही हाथों उन दोनोंको सौंपे जाता हूँ।"

अपने स्वामीका क्षीण हाथ अपने दोनों हाथोंमें लेकर भवानी चुपचाप रोने लगी।

वैकुण्ठने कहा, "गोकुलको छोड़कर उसकी माँ मर गई। उस समय दूसरा विवाह करनेकी मेरी जरा भी इच्छा नहीं थी। मैं हरगिज ब्याह न करता; लेकिन जब देखा कि मैं अकेला शायद गोकुलको न बचा सकूँगा, तब बहुत ही दुःखित होकर और बहुत ही डरते डरते ब्याह करनेपर राजी हुआ। भगवानने मेरे मनकी बात जान ली थी, इसीलिए उन्होंने मुझे ऐसी स्त्री दी जिससे मुझे कभी कोई दुःख नहीं हुआ। विनोद यदि मेरे इन अन्तिम दिनोंमें इतना दुःख न देता तो मैं कितने सुखसे आज शरीर छोड़ सकता!"

यह कहते कहते वैकुण्ठकी म्लान आँखोंमें आँसू भर आये। भवानीने

आँचलसे उन्हें पोंछ दिया, पर स्वयं उसकी भी दोनों आँखोंसे आँसुओंकी धारा बहने लगी।

वैकुण्ठने कहा, "पर क्या बतलाऊँ, मैं मर भी नहीं सकता। मैंने इतने कष्टसे जो दूकान जमाई है वह मेरे न रहते विनोदके हाथों पहुँचकर बहुत जल्दी नष्ट हो जायगी। यह मुझसे उस लोकमें बैठकर भी नहीं सहा जायगा। वहाँ मेरे कलेजेमें यह बात तीरकी तरह चुभती रहेगी।"

थोड़ी देर ठहरकर वैकुण्ठने फिर कहा, "सिर्फ इतना ही नहीं। तुम्हारे लिए भी कहीं खड़े रहनेको जगह न रह जायगी और शायद गोकुलको भी अपने बाल-बच्चोंको लेकर इधर-उधर मारे-मारे फिरना पड़ेगा।"

यह कहते कहते वैकुण्ठ मारे भयके काँप उठे। इस प्रकारकी दुर्घटनाकी कल्पना मात्रसे भी उनके कलेजेकी धड़कन बन्द होनेकी नौबत आ गई। भवानीने जल्दीसे अपने पतिके मुहँके पास मुँह ले जाकर रोते रोते कहा, "देखो, तुम विनोदको कुछ भी न दे जाना। तुमने अपने शरीरके खूनको पानी करके जो धन कमाया है, वह मैं किसी औरको न देने दूँगी। दूकान, मकान, बाग, सम्पत्ति आदि तुम गोकुलके ही नाम लिख जाओ। तुम शान्त और निश्चिन्त रहो। मैं स्वयं उस कागजपर गवाही कर दूँगी।"

वैकुण्ठने कुछ देरतक अपनी स्त्रीके मुखकी ओर देखकर ठंढी साँस लेते हुए कहा, "मैं आजकल दिन-रात यही सब बातें सोचा करता हूँ। मैं मन लगाकर भगवानको भी स्मरण नहीं कर सकता। पर क्या तुम इस बातसे सहमत हो सकोगी?"

यह कहकर वैकुण्ठने हताश भावसे फिर एक बार ठंढी साँस ली। भवानीकी छाती फट गई। उसने अपने मरणोन्मुख स्वामीकी छातीपर झुककर रुँधे हुए गलेसे कहा, "हाँ, मैं गवाही कर दूँगी। तुम्हें स्पर्श करके कहती हूँ कि कर दूँगी। मैं और कुछ नहीं चाहती—केवल यही चाहती हूँ कि तुम निश्चिन्त होओ—स्वस्थ होओ। इस समय तुम्हारे मनमें किसी प्रकारका क्षोभ और किसी प्रकारका क्लेश न रह जाय।"

वैकुण्ठ कुछ देरतक चुपचाप रहकर भवानीकी ओर देखते रहे और तब धीरे धीरे बोले, "परन्तु विनोदका क्या होगा?"

भवानीके उत्तर देनेमें पल-भरकी भी देर न हुई। बोली, उसकी चिन्ता तुम मत करो। वह लिखा पढ़ा है—अपना रास्ता आप ढूँढ़ लेगा। और

फिर वह कितना ही ख़राब क्यों न हो, गोकुल कभी उसे छोड़ नहीं सकेगा। अपने छोटे भाईकी खबरदारी वह ज़रूर रखेगा।"

वैकुण्ठने फिर और कुछ नहीं कहा, केवल एक तृप्तिकी साँस ली जिससे जान पड़ा कि उनके मनका भार बहुत-कुछ हल्का हो गया है और तब वे करवट बदलकर सो रहे। भवानी उसी जगह ज्योंकी त्यों पत्थरकी मूरतकी तरह बैठी रही। अत्यन्त दारुण अभिमानसे उसकी दोनों आँखोंसे आँसुओंकी धारा बहने लगी। उसके गर्भसे उत्पन्न सन्तानका उसके स्वामी विश्वास नहीं कर सकते, और उसे आवारा समझकर मरते समय पुत्रोचित न्याय्य अधिकारसे वंचित करते हैं, यह दुःख उसके कलेजेमें किस तरह बरछीके समान लगा, इसपर स्वामीने दृष्टिपात भी नहीं किया। विनोद चाहे अच्छा हो या बुरा, फिर-भी वह माँ ही तो है! वह आख़िर है तो उसीकी सन्तान! उस अभागी सन्तानके अन्धकारपूर्ण भविष्यको स्पष्ट रूपसे अपनी आँखोंके सामने देखकर उसका मातृ-हृदय नितान्त विह्वल हो गया। परन्तु पीछे लौटकर परित्राण पानेका भी कोई उपाय उसे दिखाई नहीं पड़ा। मरणोन्मुख स्वामीकी तृप्तिके लिए सन्तानके सर्वनाशका मार्ग जब स्वयं ही उसने उँगलीके इशारेसे दिखला दिया है, तब फिर और कौन उसकी दशाको देख-समझकर वह मार्ग बन्द करने आयेगा।

उसी दिन तीसरे पहर वकीलको बुलाकर नियमानुसार वसीयतनामा लिखा गया। वैकुण्ठने अपनी स्थावर और अस्थावर सारी सम्पत्ति अपने बड़े लड़के गोकुलके नाम लिख दी। गवाहीमें अपना नाम लिखते समय भवानीके हाथ काँप गये। मातृ-स्नेह कहींसे छिपे-छिपे बार-बार उसके हाथको पकड़ने लगा, पर वह रोक न सका। अपने स्वामीके दोनों चरणोंको हृदयमें दृढ़तासे स्थापित करके जैसे-तैसे टेढ़े-सीधे अक्षरोंमें उसने अपना नाम वसीयतनामेपर लिख दिया। विनोदको किसी बातका कुछ पता न चला। वह उस समय कलकत्तेके एक अपवित्र मुहल्लेमें और उससे भी अधिक अपवित्र संसर्गमें, शराबके नशेमें चूर पड़ा था। घरसे जो दो नौकर उसे ले आनेके लिए गये थे वे दो दिन तक निवास-स्थानपर रहकर उसके आनेकी प्रतीक्षा करते रहे और अन्तमें लाचारीसे लौटकर घर चले आये। यह समाचार वैकुण्ठको सुनानेका किसीको भी साहस न हुआ। उन्होंने भी इस विषयमें किसीसे कोई बात नहीं पूछी लेकिन फिर भी कोई बात उनसे छिपी नहीं रही।

इसके बाद और भी दो दिन जैसे तैसे बीत गये। पर आज सवेरेसे ही वैकुण्ठको साँस लेनेमें बहुत कष्ट होने लगा। दिन-भर बेहोशसे पड़े रहकर सन्ध्या होते होते उन्होंने आँखें बन्द कर लीं। भवानी सिरहाने बैठी थी और गोकुल पैंताने बैठा हुआ रो रहा था। वैकुण्ठने इशारेसे गोकुलको अपने पास बुलाया और बहुत ही क्षीण स्वरसे कहा, "जान पड़ता है, विनोदको खबर नहीं पहुँची गोकुल, नहीं तो वह ज़रूर आता।"

कहते कहते उनकी आँखोंके किनारेसे एक बूँद आँसू ढुलक पड़ा। इधर कई दिनोंसे वे अपनी जबानपर एक बार भी विनोदका नाम नहीं लाये थे। सहसा अन्तिम समयमें स्वामीके मुखसे अपने लड़केका नाम सुनकर धिक्कारसे और वेदनासे भवानीकी छाती फट गई, वह उसी प्रकार सिर झुकाये चुपचाप बैठी रही।

गोकुलने अपने पिताकी आँखें पोंछ दीं, उन्होंने कहा, "मैं उसे अपनी आँखोंसे न देख सका, पर उससे यह कह देना कि मैं उसे आशीर्वाद दिये जाता हूँ—एक दिन वह ज़रूर अच्छा बनेगा। ऐसी माताके पेटसे जन्म लेकर वह हमेशाके लिए कभी ऐसा न बना रहेगा। देखो बेटा, उस समय तुम अपने छोटे भाईको छोड़ मत देना। यह जो तुम्हारी माँ है, ऐसी माँ बहुत बड़ी तपस्या करनेपर ही मिलती है गोकुल!"

गोकुल छोटे बच्चेकी तरह रोता हुआ—बोला, "बाबूजी, मेरी माँ मेरी ही रहेंगी। परन्तु आप विनोदको अपनी आधी सम्पत्ति दे जायँ।"

वैकुण्ठने कहा, "नहीं गोकुल, मैंने बहुत कष्टसे यह सम्पत्ति प्राप्त की है। मैं यदि देखूँगा कि यह नष्ट हो रही है तो परलोकमें भी मुझे बहुत अधिक आन्तरिक कष्ट होगा। वह कष्ट मैं किसी प्रकार सहन न कर सकूँगा।"

यह कहकर और बहुत देर तक अपने लड़केके मुँहकी ओर देखते रहकर वैकुण्ठने मानो मन ही मन लड़केको अन्तिम आशीर्वाद देकर आँखें बन्द कर लीं। गोकुल उनके पैरोंपर लोटकर बिलख-बिलखकर रोने लगा। वैकुण्ठने फिर बड़े कष्टसे करवट बदलते हुए अपनी स्त्रीसे धीरेसे कहा, "देखो, ये बच्चे तुम्हारे सिपुर्द हैं, अब मैं चला।"

इसके बाद मुँहसे और कोई बात न निकली और दूसरे दिन सूर्योदयके साथ ही साथ उनके प्राण निकल गये। उस समय लोगोंने तरह तरहकी बातें कहीं। वैकुण्ठ थे तो पक्के व्यापारी, पर साथ ही बहुत साफ आदमी थे। वे बहुत ही

दीन अवस्थासे बढ़कर बड़े आदमी हुए थे, इसलिए उनके शत्रु और मित्र दोनोंकी ही संख्या अधिक थी। मित्र लोग उनके गुणोंका वर्णन करते करते अत्युक्तिको भी पार कर गये और शत्रुओंने भी उनकी निन्दा करनेमें कोई कसर नहीं रक्खी। उन्होंने कंजूस कहकर, बेमुरौवत बतलाकर और वैकुण्ठ मोदीकी फूली हुई अँगुलीके साथ कदली-काण्डकी उपमा देकर जान पड़ता है, बहुत आत्म-प्रसाद लाभ किया। तो भी, एक तुच्छ गुणकी बात उन्होंने भी अस्वीकार नहीं की। चाहे जो हो, वे चालबाज या दूसरोंका माल मारनेवाले आदमी नहीं थे। लोगोंसे उनका जो कुछ वाजिब पावना होता था, उसके सिवा उन्होंने कभी किसीसे एक पैसा भी ज्यादा नहीं लिया। और वस्तुतः व्यवसाय-सम्बन्धी यही विद्या वे विशेष रूपसे अपने बड़े लड़केको भी सिखला गये थे।

वैकुण्ठ बार-बार कहा करते थे—देखो बेटा गोकुल, मेरी यह बात तुम कभी मत भूलना कि महाजनको कोई ठगकर नहीं मार सकता। उससे अन्तमें उसीको मरना पड़ता है।

वे अपने पके हुए बालोंसे भरा हुआ सिर गोकुलको दिखलाकर कहा करते थे—गोकुल, इस सिरपर बड़ी बड़ी आफतें आई हैं और निकल गई हैं। मैंने बड़े बड़े दुःख और कष्ट भोगे हैं। लेकिन इसके जोरसे मैंने कभी किसीके सामने अपना यह सिर नीचा नहीं किया। बेटा, तुम भी मेरी मर्यादा, जैसे बने, बनाये रखना।

४

ज्यों ही यह पता चला कि विनोदको कुछ भी सम्पत्ति नहीं मिली, त्यों ही मुहल्ले-टोलेके दो-चार आदमी अपनी गाँठका पैसा खर्च करके कलकत्ते पहुँचकर विनोदको तलाश करने लगे और तब कोई बात छिपी न रही। उन लोगोंने लौटकर विनोदके सम्बन्धकी सब बातें, वह क्या करता है, कहाँ रहता है आदि सब, भली-भाँति प्रकट कर दीं। लेकिन आश्चर्यकी बात है कि अकृतज्ञ गोकुलने उन लोगोंका यह उपकार अंगीकार न किया। वह क्रोधमें आकर तड़ाकसे कह बैठा, "ये सब साले झूठे हैं, केवल ईर्ष्याके कारण इस तरहकी बदनामीकी बातें कह रहे हैं।"

बूढ़े बनर्जी महाशय भी लाठी टेकते टेकते आये और आते ही उन्होंने

रोना शुरू कर दिया। बहुत मुश्किलोंसे जब उनका रोना बन्द हुआ, तब वे बोले, "गोकुल, आज तीन दिनसे मेरे हारानने न तो कुछ खाया-पिया और न आराम किया, कलकत्तेकी गली गली छानता रहा। पचीस-तीस रुपये खर्च करके मुश्किलसे उसने पता लगाया है कि वह लड़का (विनोद) कहाँ रहता है। उसके ठिकानेको ढूँढ़ निकालना भला और किसीके वशकी बात थी!"

गोकुलने रूखेपनसे उत्तर दिया, "मास्टर साहब, मैंने तो किसीसे रुपये खर्च करनेके लिए कहा नहीं था!"

बनर्जी अवाक् हो गये। बोले, "यह क्या कहते हो गोकुल, हम तो तुम्हारे अपने ही आदमी हैं। और लोग चुपचाप बैठ सकते हैं, पर हम कैसे बैठते?"

"अच्छा, जाइए, जाइए, अपना काम देखिए।"

यह कहकर गोकुल नितान्त अशिष्टतापूर्वक अन्यत्र चल दिया। एक एक करके दिन बीत गये, पर विनोद न आया। इससे शान्त-प्रकृति गोकुल एकदम उग्र हो उठा।

भवानी इधर कुछ दिनोंमें इतनी अधिक परिवर्तित हो गई है कि देखनेसे पहचानी ही नहीं जाती। वह चुपचाप सिर झुकाये श्राद्धकी तैयारियाँ कर रही थी, लड़केका नाम जबानपर भी न लाती थी।

इधर साल-भरसे विनोद बराबर किसी न किसी बहाने गोकुलके पाससे रुपये मँगवाता रहा है। गोकुलकी स्त्री मनोरमाने पहले ही इसके कारणका अनुमान कर लिया था और इसलिए वह अपने स्वामीको बार बार सतर्क भी करती रहती थी; परन्तु फिर भी गोकुल कोई ध्यान नहीं देता था। आज सुबह मनोरमाके उसी बातके छेड़ते ही गोकुल बहुत बिगड़कर बोला "विनोद जब किसीके बापके घरका रुपया नष्ट करेगा, तब वह आकर मुझसे इस तरहकी बातें कर लेगा!" यह कहकर वह वहाँसे जल्दी ही अपनी विमाताके सामने जा पहुँचा और जोरसे बोला, "जब औरतकी रायसे चलनेके कारण इतने बड़े राजा रावणका सपरिवार नाश हो गया, तब भला हम लोग किस गिनतीमें हैं! तुमने बाबूजीके कानोंमें फुस-फुस करके वसीयत कर देनेका खूब मन्तर पढ़ा माँ, मुझे तुमने सब तरफसे मिट्टी कर दिया!"

भवानीने ज्यों-ही चकित होकर सिर उठाया, त्यों-ही वह हाथ-पैर हिलाकर कुछ क्रोधसूचक भावसे बोला, "माँ, मैं तो समझता था कि तुम बहुत भली

आदमिन हो ! पर देखता हूँ कि तुम भी कुछ कम नहीं हो ! औरतोंकी जात ही ऐसी है ! ”

इतना कहकर और मरेपर सौ दुर्रेवाली कहावत पूरी करता हुआ वह जिस तरह आया था, उसी तरह लौटकर चला गया। एक तो वह दूकानदार और फिर मूर्ख। सभी जानते थे कि गोकुल इसी तरह बात-चीत करता है और यह बात भी सभी लोग जानते थे कि जब उसे क्रोध आता है, तब उसके मुँहमें किसी तरहकी लगाम नहीं रह जाती है। लेकिन आजकल उसकी बात-चीत सीमाका उल्लंघन कर रही है, यह अपने पराये सभीको मालूम होने लगा।

तीसरे प्रहर बनर्जी महाशय सोकर उठे थे और हाथ-मुँह धो रहे थे कि इतनेमें अचानक गोकुल जा पहुँचा। यद्यपि उस दिन उसने अपमान किया था, फिर भी आखिर था तो वह बड़ा आदमी, इसलिए उसे आते देखकर वृद्ध बनर्जी महाशय सकपकाकर उठ खड़े हुए। गोकुलने तीन नोट ब्राह्मणके पैरोंके पास रखकर म्लान मुख और विनीत स्वरसे कहा, “ मास्टर साहब, मैं हारानका उस दिनका खर्च देनेके लिए आया हूँ। ”

बनर्जी महाशयने यह कहते हुए वे तीनों नोट धीरसे उठा लिये कि “ रहने दो, रहने दो भइया, इसके लिए इतनी उतावलीकी भला क्या आवश्यकता थी ? मैं आखिर तुम्हीं लोगोंका दिया हुआ ही तो खाता और पहनता हूँ ! ”

गोकुलकी आँखोंसे जल बहने लगा। उसने दुपट्टेसे आँसू पोंछते हुए कहा, “ मास्टर साहब, क्या कहूँ, विनोद अभी तक नहीं आया। हारानको साथ लेकर मैं आज कलकत्ते जाऊँगा। ”

बनर्जी महाशय तीव्रतापूर्वक अपने शरीरके सब अंग हिलाते हुए बोल उठे, “ राम राम, ऐसी बात कभी जबानपर मत लाना भइया, मेरे हारानके रहते हुए भला तुम उस स्थानपर जाओगे ? नहीं नहीं, ऐसा नहीं होगा। मैं कल ही उसे भेज दूँगा। ”

गोकुलने सिर हिलाकर कहा, “ नहीं मास्टर साहब, बिना मेरे गये काम न चलेगा। वह बड़ा अभिमानी है। वसीयतनामेंका हाल सुनकर ही वह मारे अभिमानके नहीं आया है। जब तक सब बातें मेरे मुँहसे न सुन लेगा, तब तक और किसीकी बातपर कभी विश्वास ही न करेगा। माता-पिताने भी मेरा ऐसा सर्वनाश किया है कि क्या कहूँ ! ”

इतना कहकर गोकुल अत्यन्त करुण स्वरसे रोने लगा। बनर्जी महाशयने

उसे बहुत तरहसे समझाया बुझाया और कहा कि इस अवस्थामें किसी प्रकार तुम्हारा वहाँ जाना ठीक नहीं हो सकता; और साथ ही साथ बार बार यह प्रतिज्ञा भी की कि मैं कल ही हारानको भेजकर विनोदको बुलवा दूँगा। अन्तमें गोकुल निरुपाय होकर हारानके आने-जानेके खर्चके लिए और पाँच नोट वहाँ रखकर आँसू पोंछते हुए घर लौट आया।

५

जबसे यह बात फैली कि जयलाल मास्टरको गोकुल चोरीसे अस्सी रुपये घूस दे आया है, तभीसे बहुतसे लोग गोकुलकी मूर्खतापर तरह तरहके कटाक्ष करने लगे। वह विनोदके लिए इतना विकल रहता है और विनोद उसकी ओर आँख उठाकर भी नहीं देखता, इस प्रकारका एक आभास भी घरभरके लोगोंकी आँखों और मुखोंपर अनुभव करके गोकुल मन ही मन बहुत ही संकुचित हो उठा।

इस बारको मिलाकर घरकी गाड़ी कमसे कम दस बार चंचुड़ा स्टेशनपर जाकर लौट आई थी। गोकुलने अवज्ञाके साथ कोचवानसे पूछा, "क्या कलकत्ते और गाड़ी आती ही नहीं थी जो तुम घर लौट आये? अच्छा जाओ, आराम करो।"

कोचवानने विनीत भावसे उत्तर दिया, "अभी और दो गाड़ियाँ आनेकी थीं, पर घोड़ेका दाना-पानी नहीं हुआ था, इसीलिए लौट आना पड़ा।"

गोकुलने तुरन्त ही बहुत बिगड़कर धमकाते हुए कहा, "छोटे बाबू खूब मिठाई-पूरी खाकर आ रहे हैं न, इसीलिए तुम्हारा नवाब घोड़ा दम-भरमें बिना दाना-पानीके मर जाता! जाओ, अभी ले जाओ।"

कोचवान अपने स्वामीके मनका भाव न समझ सका और डरता हुआ सलाम करके चला गया।

रसिक चक्रवर्ती बहुत दिनोंके पुराने नौकर थे। घरमें प्रायः सभी लोग उनका बहुत सम्मान करते थे। बोले, "यदि छोटे बाबू आये तो वे किरायेकी गाड़ी करके भी चले आवेंगे। आखिर आप उनके लिए इतने चिन्तित क्यों हो रहे हैं बड़े बाबू!"

गोकुलने नहीं देखा था कि रसिक भी पास ही खड़े हैं, इसलिये उसने कुछ अप्रतिम होकर कहा, "मैं चिन्तित होऊँगा उस अभागेके लिए ! चक्रवर्ती महाशय, आप यह कह क्या रहे हैं ! घरमें औरतें दिन-रात इस तरह रोना-धोना न मचाये रहतीं, तो मैं उसे घरमें भी न घुसने देता। अगर मैं बिगड़ जाऊँ तो वह कपूत—हाँ।"

रसिकसे कुछ छिपा नहीं था। यह वे अच्छी तरह जानते थे कि विनोदको न देखनेके कारण घरकी औरतोंमेंसे कभी किसीकी आँखोंमें आँसू नहीं आये। लेकिन फिर भी इस बातको लेकर उन्होंने कोई बहस नहीं की।

बापका श्राद्ध बड़े समारोहसे किया जायगा। गोकुल उसीके इन्तजाममें अत्यन्त व्यस्त हो रहा था, फिर-भी उसके दोनों कान गाड़ीके पहियोंकी तरफ ही लगे थे। कोई दो घण्टे बाद दूसरी एक भारी गाड़ीके आनेकी आवाज सुनकर रसिक चक्रवर्तीको सुनाते हुए उसने एक नौकरको बुलाकर कहा, "ज़रा आगे बढ़कर देख तो सही कि यह हमारी ही गाड़ी तो नहीं है ! उसने दोनों घोड़ोंको हैरान कर डाला था, इसीलिए मैंने गुस्सेमें आकर दो बातें कह दी थीं। कहीं उन बातोंको सच समझकर वह बदमाश फिरसे गाड़ी लेकर स्टेशन तो नहीं चला गया था ? गुणवान् भाईके लिए फिर गाड़ी भेजनी पड़ेगी ! पर सौतेली माँके बिगड़नेके डरसे दोनों घोड़ोंकी जान तो कुछ ली नहीं जायगी !"

रसिकने सब बातें सुन लीं, पर भला-बुरा कुछ भी नहीं कहा। थोड़ी ही देरमें खाली गाड़ी लौट आई और अस्तबलमें चली गई। नौकरने आकर समाचार दिया कि छोटे बाबू नहीं आये। रसिक भी उस समय मौजूद थे। गोकुलने उसकी ओर देखकर रूखी हँसी हँसकर कहा, "तब तो मैं मारे दुःखके मर जाऊँगा ! अच्छा जा जा और घर जाकर सुना आ मालकिनको उनके पासशुदा लड़केकी कीर्ति ! अब यदि वह कल परसों आया और मैंने उसे फाटकके अन्दर घुसने दिया तो तुम कहना कि मैं गोकुल मजूमदार नहीं ! यह मैं अभीसे कहे देता हूँ कि एक बार यदि मैं नाराज़ हो गया तो स्वयं ब्रह्मा, विष्णु और महेश भी आकर उसकी सिफारिश करें तो-भी उसकी तरफ न देखूँगा। तुम माँसे कह देना रसिक बाबू, कि चाहे दुनिया इधरसे उधर क्यों न हो जाय, पर गोकुल मजूमदारकी बातमें बाल भर भी उलट-फेर न होगा ! यों तो समय आनेपर उसे कुछ मिल भी जाता, पर अब एक पैसा भी न मिलेगा। घरके अन्दर तक तो उसे घुसने न दूँगा।"

इतना कहकर गोकुल तेजीके साथ अन्दर चला गया।

घरकी स्त्रियोंको इस बातका पता नहीं चला कि गोकुल किसके ऊपर नाराज़ होकर असमयमें आकर सन्ध्यासे ही पलंगपर लेट गया है। दासीने आकर उनसे दूध पीनेके लिए कहा, तो उसे फटकार खाकर जाना पड़ा। दूकानके गुमाश्तेसे श्राद्धके दिन अध्यापकों और उनको दी जानेवाली बिदाईकी रकमका पुरजा तैयार करनेके लिए कहा गया था। ज्यों ही उसने घरके अन्दर आकर कुछ पूछा, त्यों ही गोकुलने जल्दीसे उठकर उसके हाथसे वह कागज़ छीन लिया, उसे टुकड़े टुकड़े करके फेंक दिया और कहा, "बाबूजी, दस-पाँच इलाके नहीं छोड़ गये हैं, जो राजे-रजवाड़ोंकी तरह पंडितोंकी बिदाई की जायगी! जाओ, जाओ, हमारे यहाँ इस तरहकी अमीरी नहीं चलेगी।"

गुमाश्ता बहुत ही कुण्ठित और लज्जित होकर चला गया।

जब भवानीको यह मालूम हुआ, तब वह कमरेकी देहलीपर आकर बैठ गई और स्नेहपूर्वक मधुर स्वरसे पूछने लगी, "क्यों बेटा, क्या आज तुम्हारी तबीयत ठीक नहीं है?"

गोकुल जिस तरह लेटा था, उसी तरह लेटे लेटे बोला, "ठीक है।"

"तो फिर तुमने कुछ खाया क्यों नहीं और अभीसे एकाएक आकर इस तरह लेट क्यों रहे?"

"यों ही लेट गया हूँ।"

भवानीने कुछ देरतक चुप रहनेके बाद फिर पूछा, "अध्यापकों और पंडितोंकी बिदाईका जो पुरजा तैयार हुआ था, वह तुमने क्यों फाड़ डाला? न्योतेकी चिट्ठियाँ अगर कल सबेरे नहीं भेजी जायँगी तो फिर कब भेजी जायँगी?"

गोकुलने भी ठीक उसी तरह उत्तर दिया, "नहीं भेजी जायँगी तो न सही।"

भवानीने कुछ तो चकित होकर और कुछ नाराज़ होकर कहा, "देखो बेटा, इस समय इस तरह अधीर होनेसे काम नहीं चलेगा। जो कुछ हुआ हो, मुझसे सब साफ कह दो। मैं सब ठीक कर दूँगी।"

माताकी बातके उत्तरमें गोकुल आँखें मरोड़ता हुआ अपने कम्बलवाले बिछौनेपरसे उठ बैठा। उसे कभी इस बातकी शिक्षा ही नहीं मिली थी कि किसके साथ किस तरह बात-चीत करनी चाहिए। वह कर्कश स्वरसे बोला, "माँ, जो तुम्हारी राय मानकर चले, वह गधा है। बाबूजी तुम्हारी रायसे

चलते थे, इसलिए क्या मैं भी तुम्हारी ही रायसे चला करूँ? मैं केवल दस ब्राह्मणोंको भोजन कराके शुद्ध हो जाऊँगा, अधिक आडम्बर न करूँगा।"

इतना कहकर गोकुल फिर दीवारकी तरफ मुँह करके लेट गया।

भवानीने शान्त भावसे कहा, "राम राम बेटा, वे इस समय स्वर्गमें हैं—भला उनके सम्बन्धमें इस तरहकी बातें तुम्हें कहनी चाहिए?"

गोकुलने कोई उत्तर नहीं दिया। भवानीने कुछ देरतक चुप रहनेके बाद फिर कहा, "बेटा, ज़रा यह तो सोचो कि यदि तुम ऐसा करोगे तो लोग क्या कहेंगे! जिनकी जैसी स्थिति हो, उन्हें वैसा ही काम करना चाहिए। नहीं तो बदनामी होती है।"

गोकुलने उसी तरह लेटे हुए कहा, "करने दो सालोंको बदनामी, मैं किसीका कर्जदार या दबैल थोड़े हूँ जो मारे डरके मर जाऊँगा।"

"लेकिन आखिर इससे उनकी तृप्ति कैसे होगी? वे जो इतनी धन-सम्पत्ति छोड़ गये हैं, उसके अनुसार यदि उनका काम न हुआ तो वे सुखी न होंगे।"

भवानीने जान-बूझकर गोकुलके हृदयके ऐसे कोमल स्थानपर आघात किया था, जहाँ उसे सबसे अधिक व्यथा हो सकती थी। वह अच्छी तरह जानती थी कि पिताके प्रति गोकुलका कितना अधिक प्रेम था।

गोकुल उठ बैठा और रुँधे हुए गलेसे बोला, "माँ, खर्चके लिए मैं कब मना करता हूँ। जितनी इच्छा हो उतना खर्च करो। पर ज्यों ज्यों दिन बीतते हैं, त्यों त्यों मेरे हाथ-पैर तो सुस्त हुए जाते हैं। विनोद नाराज़ होकर उदासीन हो गया है। अब तुम्हीं बतलाओ माँ, कि मैं अकेला क्या क्या करूँ?"

इतना कहते ही गोकुल उच्छ्वासित होकर रोने लगा। अब भवानी भी अपने आपको न सँभाल सकी। वह भी रोने लगी। बहुत देरतक चुप रहनेके बाद अन्तमें आँचलसे आँसू पोंछकर उसने रुँधे हुए गलेसे पूछा, "क्या विनोदको इस बातकी खबर मिल गई है?"

गोकुलने तुरन्त उत्तर दिया, "मिली क्यों नहीं है मा?"

"उसे खबर दी किसने?"

परन्तु स्वयं उसे भी यह मालूम नहीं था कि विनोद तक घरका यह दुःखद समाचार पहुँचाया किसने। बनर्जी महाशयके लड़के हारानके सम्बन्धमें उसे स्वयं भी सन्देह हो गया था। लेकिन फिर-भी जाने कैसे उसे मनमें निश्चय-सा हो गया था कि विनोदको सारा हाल मालूम हो चुका है और वह केवल लज्जा

और अभिमानके कारण ही घर नहीं आ रहा है। उसने अपनी माँके मुँहकी ओर देखते हुए कहा, "माँ, खबर तो उसे हो गई है। बाबूजी सदाके लिए इस संसारसे चले गये हैं, इसका क्या उसे पता न लगा होगा ? क्या मेरी ही तरह उसके कलेजेके अन्दर भी आग नहीं लग रही होगी ? उसे सब मालूम है माँ, सब मालूम है।"

कुछ देरतक चुप रहनेके बाद जब भवानीने बात कहना आरम्भ किया, तब गोकुलको यह देखकर आश्चर्य हुआ कि अब माँका गला पहलेकी तरह रुँधा हुआ नहीं है, बल्कि अब उसमें उत्ताप भी नहीं है। बहुत ही सहज भावसे उसने कहा, "गोकुल, यदि यह बात सत्य है, तो बेटा, फिर ऐसे भाईके लिए तू अधिक दुःख मत कर। मनमें समझ ले कि हमारे वंशमें और कोई लड़का-बाला है ही नहीं। जो गुस्सेमें आकर अपने मरे हुए बापका श्राद्ध करनेके लिए भी घर न आवे, उसके साथ हम लोगोंका कोई सम्बन्ध नहीं है।"

गोकुलकी समझमें न आया कि माताकी इस बातका क्या उत्तर दूँ, इसलिए वह चुप हो रहा। पर इसका उत्तर दिया उसकी स्त्रीने। वह दरवाजेकी आड़में बैठी हुई सब बातें सुन रही थी। वहींसे बहुत स्पष्ट स्वरमें उसने कहा, "बाबूजी क्या बिना समझे-बूझे ही इतना बड़ा काम कर गये हैं ! वे तो थे अन्तर्यामी, जब तीन-चार दिन तक ढूँढ़नेपर भी कलकत्तेमें देवरका पता न चला, तो उन्होंने उनके सारे गुण जान लिये। जब वे स्वयं ही अपनी सारी सम्पत्ति हमें लिख गये हैं तब हम लोगोंको तो इसमें कोई दोष दे ही नहीं सकता। तुम हो, इसलिए चाहे जितना भाई भाई कर लो, पर अगर कोई और होता तो"—

बात असमाप्त ही रह गई। और कोई क्या करता, इस बातको खोलकर कहना बड़ी बहूने व्यर्थ समझा।

किन्तु भवानीको बड़ा आश्चर्य हुआ; क्योंकि आजसे पहले अपने ससुरके जीते-जी बड़ी बहूने कभी इस तरहकी कोई बात नहीं की थी, यहाँ तक कि सासके सामने भी अपने पतिको लक्ष्य करके वह कभी कोई बात नहीं करती थी। इन थोड़ेसे दिनोंमें उसकी इतनी अधिक उन्नति देखकर भवानी निर्वाक् रह गई।

गोकुल भी पहले कुछ हत-बुद्धि-सा हो गया। किन्तु तुरन्त ही उसने खुले हुए दरवाजेकी ओर दाहिना हाथ बढ़ाकर भवानीके मुखकी ओर देखते हुए

बिल्कुल पागलोंकी तरह चिल्लाकर कहा, "माँ, सुन रही हो ? ज़रा इस छोटे लोगोंकी लड़कीकी बात सुन लो !"

इसके उत्तरमें बड़ी बहू चिल्लाई तो नहीं, पर कुछ और भी सबल स्वरमें स्वामीको लक्ष्यकर बोली, "देखो, जो कुछ कहना हो, मुझे कहो। बाप-दादा तक मत जाओ—मेरे बाप और तुम्हारे बाप दोनों बराबर हैं।"

उत्तर देनेके लिए गोकुलके ओंठ फड़कने लगे, किन्तु मुँहसे बात नहीं निकली। पर उसकी दोनों आँखोंसे मानो ज्वाला निकलने लगी।

भवानी अभी तक चुप थी। अब वह मधुर तिरस्कारके स्वरमें बोली, "देखो बेटी, तुम्हें इन सब बातोंके बीचमें बोलनेकी आवश्यकता नहीं है। जाओ, अपना काम देखो।"

बहूने उत्तर दिया, "मैंने आज तक कभी कोई बात नहीं कही। नौकर-मजदूरनियोंकी तरह ही रहती आई हूँ और दिन-रात काम करती करती मरी हूँ। लेकिन जो ये खाते-पीते, सोते-जागते, उठते-बैठते हरदम यह कहा करते हैं कि मेरा भाई यह पास है, मेरा भाई वह पास है, उस भाईने इनसे आज तक किसी दिन घरमें आकर मुँहसे अच्छी तरह बात भी की है ? यदि इन्हें स्वयं ही कुछ शर्म-हया होती तो फिर किसीके कुछ कहनेकी आवश्यकता ही क्या थी ?"

इतना कहकर बहू बिना पल-भरकी अपेक्षा किये ही पैरोंसे धम धम करती और अपनी क्रोध-भरी हालत बतलाती हुई वहाँसे चली गई। उसकी बात सुनकर इतने दिनों बाद आज भवानी स्तम्भित हो गई। इतने दिनों तक अपनी बड़ी बहूको वह पहचान ही न पाई थी। आज पहचानकर उसके दुःख, क्षोभ और शंकाकी सीमा नहीं रही।

लेकिन बड़ी बहू यहाँसे एकदम चली नहीं गई। वह बरामदेमेंसे जान-बूझकर ऐसे ढंगसे, जिसमें किसीके सुननेमें कुछ भी बाधा न हो, कहने लगी, "जब तब केवल ढेरके ढेर रुपयोंका बन्दोबस्त करनेके लिए ही बड़े भइया हैं। मैंने अपने मामाके भी तो लड़के बी० ए०, एम्० ए० होकर निकले देखे हैं। यदि ज़रा-सा सावधान करने जाती हूँ, तो बड़ी मिरचें लगती हैं। सो अब चाहे किसीको मेरी बातें कड़वी लगें चाहे मीठीं, पर अपना रुपया इस तरह बरबाद होते देखकर और अपने बाल-बच्चोंका आगम सोचकर मैं सदाके लिए मुँह बन्द करके थोड़े ही बैठी रह सकती हूँ। बुद्धू बड़े भइया मिल गये

हैं, सो जितना हो सका है, ठग ठगकर वसूल किया है। सो खूब ठगावें, मेरा क्या ! उन्हींके बाल-बच्चे दर दर मारे मारे फिरेंगे।"

इतना कहकर बड़ी बहू वहाँसे सचमुच ही चली गई।

गोकुल हाथ-पैर पटकता हुआ उठ खड़ा हुआ और अनुपस्थित स्त्रीको लक्ष्य करके गरजता हुआ कहने लगा, "मैं बुद्धू हूँ ? कौन साला कहता है ? आखिर यह सारी सम्पत्ति कमाई किसने है ? मैंने या विनोदने ? मेरी आँखोंमें धूल झोंककर मुझसे रुपये वसूल कर ले जाय, विनोदके बापकी ताकत है ! मैं बड़ा हूँ, वह छोटा है। उसने चार इम्तिहान पास किये हैं, मैं ऐसे दस इम्तिहान पास कर सकता हूँ, जानती है ? मैं बुद्धू हूँ ? आकर घरमें घुसे तो, मैं दरबानसे धक्के देकर उसे निकलवा दूँगा। देखता हूँ, कौन उसे घरमें रखता है ?"

बस वह इसी तरहकी न जाने कितनी असम्बद्ध और निरर्थक बातें गरज गरजकर कहने लगा। भवानी पहले ही चुप थी, अब भी कुछ न बोली। बहुत देर तक बिलकुल निस्तब्ध होकर पत्थरकी मूरतकी तरह बैठी रही और अन्तमें वहाँसे उठकर धीरे धीरे चली गई।

६

उस दिन गोकुल और उसकी स्त्रीमें झगड़ा तो हुआ, पर दूसरे ही दिनके व्यवहारसे पता चल गया कि उसका निपटारा उसी रोज रातको ही हो जानेमें कोई कसर नहीं रही है। एकाएक सबेरेसे ही गोकुल घरके सब काम-धन्धोंमें तत्परतापूर्वक लग गया और घरके सब लोगोंको बार बार स्मरण दिलाने लगा कि श्राद्धका दिन सिरपर आ गया है और अब उसमें केवल तीन दिन बाकी हैं। बाहरवालोंमेंसे यदि कोई उसके सामने विनोदका जिक्र छेड़ता था तो वह कानपर उँगली रखकर कहता था, "मरनेके समय पिता ही जिसे त्याज्य पुत्र ठहरा गये हैं उसकी बात मुझसे कोई न पूछे। हम लोगोंके साथ अब उसका कोई सम्पर्क नहीं है। मेरा जो भाई था, वह तो मर गया है!"

इस तरहकी बातें सुनकर किसीने आँख दबाकर अपने किसी साथीको इशारा किया और किसीने उसकी आँखें बचाकर सिर हिलाते हुए अपने मनका भाव प्रकट किया। अर्थात् यह सीधी सीधी बात सबकी समझमें आ गई कि अब विनोदको एक पैसा भी न मिलेगा, और गोकुलने, चाहे जिस

कौशलसे हो, सोलहों आना माल हजम कर लिया है। अब बहुतसे लोग गुप्त रूपसे विनोदके साथ सहानुभूति प्रकट करने लगे। यहाँ तक कि कुछ लोग अपनी बात-चीतमें यह भी आभास देने लगे कि यदि विनोद आकर इस धूर्त्तता और जालसाजीके विरुद्ध मुकद्दमा लड़े, तो वह उन लोगोंसे सहायता भी पा सकता है। सुविज्ञ जयलाल बनर्जी तो साफ साफ कहने लगे कि "मनुष्य कभी ठीक तरहसे नहीं पहचाना जा सकता और इस बातका जीता-जागता प्रमाण यह गोकुल मजूमदार है। केवल मैं ही एक ऐसा हूँ जिसकी आँखोंमें यह धूल नहीं झोंक सका। क्योंकि, जब मुहल्ले-टोलेके सभी छोटे-बड़े स्त्री पुरुष, एक स्वरसे गोकुलको न्यायनिष्ठ, भ्रातृ-वत्सल, धर्मराज युधिष्ठिर कहकर और चिल्ला-चिल्लाकर आस्मान फाड़े डालते थे, उस समय केवल मैं ही चुप-चाप मुस्कराया था और मन ही मन बोला था—अरे, विमाताका लड़का, सौतेला भाई और उसपर इतना अधिक प्रेम! वेदों और पुराणों तकमें जो बात आज तक कभी कहीं नहीं हुई, वह बात होगी भला इस घोर कलि-कालमें! केवल इसी-लिए मैं इतने दिनों तक चुप-चाप बैठा सब तमाशे देख रहा था और किसीसे कुछ नहीं कहता था। और आवश्यकता ही क्या थी? मैं तो खूब अच्छी तरह जानता था कि किसी न किसी दिन सारा भंडा आप ही फूट जायगा। अब तुम्हीं देखो आँखें खोलकर कि इस भले और भोले-भाले गोकुलके सम्बन्धमें मेरे मनमें बराबर इतने दिनोंसे जो धारणा चली आती थी, वह ठीक थी या नहीं।"

परन्तु उनके मनमें इतने दिनोंसे जो धारणा थी, उसका आज तक तो कभी किसीको पता लगा नहीं था, इसलिए सभी लोगोंको उनकी प्राज्ञता चुपचाप मान लेनी पड़ी और देखते देखते सूखे खैरकी आगकी तरह यह बात सारी बस्तीमें फैल गई। किन्तु गोकुलको इस बातका पता भी न चला कि बाहर ही बाहर मेरे विरुद्ध यह आन्दोलन इतनी तेजीसे इतना अधिक फैल गया है।

भवानी सदासे अल्प-भाषिणी थी। तिसपर कल रातसे तो मारे व्यथाके उसका हृदय बिलकुल ही स्तब्ध हो गया था। एक बार मौका पाकर गोकुलकी स्त्री मनोरमाने अपने स्वामीको एकान्तमें बुलाकर इस बातकी ओर उसका ध्यान आकृष्ट करते हुए कहा, "माँका रंग-ढंग देख रहे हो?"

गोकुलने उद्विग्न होकर कहा, "नहीं तो, क्यों, माँको क्या हुआ है?"

मनोरमाने तानेके तौरपर कहा, "होगा और क्या! कल मैंने देवरजीकी

व्यर्थ रुपये बरबाद करनेकी बात कही थी न। बस तभीसे उन्होंने मेरे साथ बात-चीत करना बिलकुल बन्द कर दिया है। तुम्हारे साथ तो बात-चीत करती हैं न?"

गोकुलने रूखेपनसे उत्तर दिया, "नहीं, मेरे साथ भी नहीं करतीं।"

मनोरमाने कुछ अजब ढँगसे गर्दन हिलाकर और कण्ठ-स्वरको और नीचा करके कहा, "सब हाल देख रहे हो न? देवरजीने जो इतना रुपया दोनों हाथोंसे उड़ाया, वह सब अगर बचा रहता तो हम लोगोंका ही होता। बाबूजी तो सारी ही सम्पत्ति हम लोगोंके नाम लिख गये हैं, सो ये तो सब तरहसे हम लोगोंका सर्वनाश करते रहें और अगर कहीं हम लोगोंके मुँहसे यह बात जरा-सी भी बाहर निकल जाय, तो मारे गुस्सेके हम लोगोंके साथ बात-चीत करना भी बन्द कर दें! यह कैसा व्यवहार है? तुम तो माँ माँ कहते थकते नहीं, तुम्हीं, बतलाओ कि मैं सच कहती हूँ या झूठ?"

गोकुलके चेहरेका रंग एकबारगी काला पड़ गया। उसकी समझमें ही न आया कि इस बातका क्या उत्तर दिया जाय। शायद मनोरमा यह समझ गई और इसी लिए बोली, "वे चाहे जैसे हों और चाहे जो करें, पर आखिर हैं तो उनके पेटके लड़के। तुम ठहरे सौतके लड़के और तुम्हें मिली है सम्पत्ति—तब भला कोई स्त्री यह सह सकती है? नहीं नहीं, मेरी सभी बातें तुम इसी तरह उड़ा दोगे, तो काम नहीं चलेगा। अब तुम्हें जरा सावधान होकर रहना पड़ेगा। मैं अभीसे बतलाये देती हूँ कि अगर तुम इसी तरह दिन-रात माँ माँ करके गद्गद होते रहोगे तो सब कुछ नष्ट हो जायगा। धन-दौलत बड़ी बेढब चीज है।"

गोकुलका हृदय एक अभूतपूर्व शंकासे थरथरा उठा। उसके चेहरेका रंग उड़ गया और वह केवल मुँह ताकता रह गया। उसकी स्त्री बोली, "हम लोग ठहरीं औरतें। औरतोंके मनका भाव जैसा हम लोग समझ सकती हैं वैसा तुम मर्द लोग नहीं समझ सकते। मेरी बात ध्यानसे सुनो।"

इतना कहकर मनोरमाने पहले कुछ देरतक अपने स्वामीके मुखकी ओर आँखें गड़ाकर देखा और इस प्रकार यह अनुमान करके कि मेरी बातोंका, इनपर कैसा और कितना प्रभाव पड़ा है फिर जोर देकर कहना आरम्भ किया, "और फिर देवरजीका काम सदा इसी तरह आवारा घूमते रहनेसे तो चलेगा नहीं। उन्हें तुमने लिखाया पढ़ाया भी कुछ कम नहीं है। अब तो उन्हें जैसे तैसे नौकरी चाकरी करके अपनी माँको लेकर कहीं अपनी घर गृहस्थीका इन्तजाम करना ही पड़ेगा। अपनी माँको अधिक दिनोंतक तो

वे हम लोगोंके पास रख नहीं सकेंगे। इसके सिवा, उन्हें अपने रहनेके लिए कहीं कोई छोटी मोटी झोपड़ी भी बनानी पड़ेगी। उस समय हम लोगोंसे भी जहाँतक हो सकेगा, उनकी कुछ मदद कर देंगे, जिसमें किसीको यह कहनेकी जगह न रहे कि फलाने मजूमदारके लड़केने अपने सौतेले भाईकी बात भी न पूछी। जो लोग कहते हैं वे कहते रहें कि सौतेले भाईके साथ तुम्हारा क्या सम्बन्ध है; पर हम ऐसी बात नहीं कह सकते कि वे हमारे वंशके नहीं हैं। "

इतना कहकर मनोरमा अपने स्वामीको सोचने-विचारनेका अवकाश देनेके लिए अन्यत्र चली गई। गोकुल वहीं बैठकर स्वप्नाविष्टकी तरह शून्य दृष्टिसे देखता हुआ मानों तरह तरहके अद्भुत आश्चर्य स्वप्न देखने लगा। मनोरमाकी और सब बातें तो बिलकुल दब गईं, केवल एक बात रह-रहकर उसके कानोंमें गूँजने लगी कि धन दौलत बहुत ही बेढब चीज़ है और केवल इसी लिए माँ नाराज होकर और मुझे छोड़कर सदाके लिए विनोदके पास चली जा रही हैं। उसने सोचा कि मेरी स्त्रीने कुछ झूठ नहीं कहा। आज दिन-भरसे माँके साथ एक बार भी मेरी बात-चीत नहीं हुई। दो तीन बार मैं कामसे उनके सामनेसे होकर गया-आया भी, लेकिन उन्होंने आँख उठाकर भी मेरी तरफ नहीं देखा। भवानी सदासे ही बहुत कम बोलती है, यह जानकर उस समय तो गोकुलको इस बातका कुछ खयाल ही नहीं हुआ था; पर इस समय सारा मामला उसे साफ साफ पानीकी तरह दिखाई पड़ने लगा! परन्तु माताका यह मौन विरोध भी उसके लिए सहन करना नितान्त असम्भव था, इस लिए वह वहाँसे उठकर उसी दम माँके साथ कहा-सुनी करनेके लिए जल्दी पाँव बढ़ाता हुआ उसके कमरेमें जा पहुँचा। कमरेमें पैर रखते ही उसने कहा "माँ, यह ठहरा काम-धन्धेका घर। यदि तुम इस तरह चुपचाप बैठोगी तो कैसे काम चलेगा?"

ज्यों ही भवानीने चकित होकर सिर उठाया और गोकुलकी ओर देखा, त्यों ही वह बोल उठा, "तुम्हारी बहूने जो यह कहा कि विनोद इतने अधिक रुपये नष्ट कर रहा है, सो इसमें कुछ झूठ तो है नहीं। यदि बाबूजी उसकी सम्पत्ति मुझे दे गये हैं तो इसमें मेरा क्या दोष है? तुम्हें जो कुछ कहना सुनना हो, उनसे कहो सुनो—पर मैं कहे देता हूँ, मेरे ऊपर तुम इस तरह क्रोध नहीं करने पाओगी।"

भवानीने मर्माहत होकर धीरेसे उत्तर दिया, " गोकुल, न तो मैंने किसीपर क्रोध ही किया है और न मैं किसीसे कुछ कहना सुनना ही चाहती हूँ "

" अगर नहीं चाहतीं, तो फिर इस तरह रहनेसे काम नहीं चलेगा। विनोदसे कहो कि वह कोई नौकरी-चाकरी ढूँढे। मेरे घरमें उसे जगह नहीं मिलेगी। "

" वह तो होनेवाला ही है गोकुल, इसके लिए ज्यादा कहनेकी आवश्यकता ही क्या है ? "

इतना कहकर भवानी सिर झुकाकर बैठ रही।

जब गोकुल इस तरह झगड़ा न कर पाया, तब लाचार होकर क्रोधमें न जाने क्या क्या बड़बड़ाता हुआ वहाँसे चला गया और स्त्रीको पुकारकर बोला, " आज माँसे मैंने साफ साफ कह दिया कि विनोदका इस घरमें गुजारा न हो सकेगा, चाहे वह नौकरी-चाकरी करे या जीमें आवे, वह करे। मैं कुछ नहीं जानता। "

मनोरमा मारे खुशीके कुछ और आगे बढ़ आई और बहुत धीरेसे पूछने लगी, " तो फिर उन्होंने क्या कहा ? "

गोकुलने अस्वाभाविक उत्तेजनासे उत्तर दिया, " कहेंगी और क्या ! उनके कहनेकी मैं क्या पर्वाह करता हूँ ! "

मनोरमाने आँखें मटकाते हुए पूछा, " तो भी कुछ कहा होगा ? "

गोकुलने उसी प्रकार उत्तर दिया, " कहेंगी और क्या ! उन्हें मानना पड़ा कि विनोदका इस घरमें रहना नहीं हो सकेगा ! "

मनोरमाने अपना गला और भी धीमा करके कहा, " यह तो हुई सोलह आने गुस्सेकी बात, कुछ समझते भी हो ? माँका मन तो लगा हुआ है अपने लड़केकी तरफ और तुम हो रहे हो उनकी आँखोंकी किरकिरी। "

गोकुलने गर्दन हिलाकर कहा, " क्या मैं ये सब बातें नहीं समझता ? मुझसे कहीं इस तरहकी चालाकियाँ चल सकती हैं ? "

बाहर आते ही वह अपने सामने रसिक चक्रवर्तीको देखकर बोला, "क्यों जी, एक नई बात तुमने सुनी है ? इतने दिन तक इतना सब कुछ करके भी अब मैं माँकी आँखोंमें खटकने लगा हूँ। उन्होंने मुझसे बोलना-चालना भी छोड़ दिया है। अगर मैं सामने पहुँच जाता हूँ तो वे मुझे देखकर मुँह फेर लेती हैं।"

चक्रवर्तीने वास्तविक आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा, "नहीं नहीं, बड़े बाबू, आप ये कैसी बातें करते हैं?"

"कैसी बातें करता हूँ!—अरे ओ मुनुआकी माँ, सुन सुन, जरा इधर तो आ।"

घरकी बुढ़िया दासी किसी कामसे बाहर जा रही थी। ज्यों ही वह पास आकर खड़ी हुई त्यों ही गोकुलने रसिक चक्रवर्तीकी ओर देखकर कहा, "लो, इसीसे पूछ देखो। क्यों री मुनुआकी माँ, तूने माँको मुझसे बातें करते हुए देखा है! सामना होते ही वे मुझे देखकर मुँह फेर लेती हैं न!"

मुनुआकी माँ कुछ भी नहीं जानती थी। वह पहले तो कुछ देर तक मूढ़ बनकर देखती रही और अन्तमें यों ही गरदन हिलाकर मालिकका मन रखती हुई अपने कामसे चली गई।

"सुन लिया न सच है या झूठ?"

यह कहकर गोकुल चक्रवर्तीके प्रति कुछ इशारा-सा करके चला गया।

उस दिन मुहल्ले-टोलेके जितने लोग मिलने जुलनेके लिए आये, उन सबसे गोकुल अपनी विमाताके विरुद्ध इसी तरहकी शिकायत करता रहा, और सबसे यही कहता फिरा कि आखिर तो मैं उनका सौतेला लड़का ठहरा! इसी लिए तो बाबूजीके मरते ही मैं उनकी आँखोंमें जहर-सा मालूम होने लगा हूँ!

सन्ध्या-समय मकानके अन्दर जाकर गोकुलने भवानीको लक्ष्य करके कहा, "मुझे ऐसी गरज नहीं पड़ी है कि मैं आदमियोंको बर्दवान भेजकर वहाँसे छोटी बुआ वगैरहको बुलवाऊँ। जिन्हें आना होगा, वे आप ही आ जायँगे।"

भवानीने सिर उठाकर बहुत कोमल स्वरसे कहा, "पर बेटा, क्या यह कोई अच्छी बात होगी?"

गोकुलने तीव्र स्वरसे कहा, "मैं नहीं जानता कि अच्छी बात होगी या बुरी। दोनों हाथोंसे लुटानेके लिए मेरे पास इतना रुपया नहीं है। मैं कहे देता हूँ कि अब इस बारेमें तुम मुझसे जिद न करना।"

बर्दवानसे ननद वगैरहको बुलवानेके लिए कल भवानीने ही गोकुलको आदेश दिया था, पर इस समय वह और कुछ न बोली, चुपचाप अपने काममें लग गई। तो भी गोकुल इधर-उधर टहलता हुआ कहने लगा, "बस इतना कह देनेसे ही तो मैं उन्हें बुलवा नहीं सकता माँ कि 'ले आओ', कर्ज करके तो मैं अपने आपको डुबा नहीं दूँगा!"

भवानीने अस्फुट स्वरमें कहा, "अच्छी बात है, तुम जो अच्छा समझो वह करो।"

तब गोकुल यह कहता हुआ वहाँसे चला गया कि "अब तो सब बातें मुझको ही समझनी बूझनी पड़ेंगीं! मेरी क्या खुदकी माँ हैं? अगर अब मैं मर भी जाऊँ तो किसीका क्या बिगड़ता है? अब मेरा यहाँ है ही कौन? अब तो स्वयं ही मुझे अपने आपको सँभालना चाहिए। रुपया-पैसा खूब समझ-बूझकर खर्च करना चाहिए। क्यों कि मेरी अपनी माँ तो हैं नहीं!"

जब भवानीने देखा कि रुपये-पैसे और धन-सम्पत्तिपर एकाएक गोकुलकी इतनी अधिक आसक्ति बढ़ गई है, तब चुपचाप एक ठंढी साँस ले ली। लेकिन गोकुल कुछ दूर जाकर तुरन्त ही फिर लौट आया और बोला, "क्या मैं यह समझता नहीं हूँ? क्या तुमने क्रोधसे यह बात नहीं कही? कल तो स्वयं ही तुमने कहा था—गोकुल, आदमी भेजकर अपनी बुआ वगैरहको बुलवा लो। और आज कहती हो कि जो अच्छा समझो, वह करो। बाबूजी नहीं हैं, भाई नहीं है, इसी लिए तुम मुझे इतना तंग करती हो। लोग कहेंगे कि गोकुल सचमुच ही अपनी माँकी बात नहीं सुनता!"

गोकुलका यह नितान्त अबोध्य अभियोग सुनकर भवानी विमूढ़ हतबुद्धिकी तरह कुछ देर तक उसके मुँहकी ओर देखकर बोली, "गोकुल, मैं तो तुम लोगोंकी किसी भी बातमें दखल नहीं देती—मैंने तो बेटा, कुछ भी नहीं कहा।"

गोकुलकी आँखोंमें अचानक आँसू भर आये, वह बोला, "माँ, भला मैंने तुम्हारी कौन-सी आज्ञा नहीं सुनी, जो तुम इस तरहकी बातें कर रही हो? लेकिन मैं कहे देता हूँ कि इसका फल अच्छा नहीं होगा। विनोदने तो लज्जा और घृणाके मारे घर-बार छोड़ ही दिया, अब मुझे भी जिधर रास्ता दिखाई पड़ेगा, चला जाऊँगा, तुम अपनी धन-सम्पत्ति लेकर आरामसे रहना।"

इतना कहकर गोकुल आँसू पोंछता हुआ जल्दीसे चला गया।

७

गोकुलकी बड़ी लड़की हेमांगिनी अपनी दादीके पास सोया करती थी। वह बहुत सबेरे ही चिल्लाती हुई आई और बोली, "चाचा आये हैं। माँ, चाचा आये हैं।"

गोकुल बगलवाले कमरेमें सो रहा था। वह अपने कम्बलके बिछौने परसे चटपट उठ बैठा। उसने सुना कि स्त्री प्रसन्नता-रहित आश्चर्यसे पूछ रही है, "क्यों री, तेरे चाचा कब आये?"

लड़कीने कहा, "माँ, बड़ी रातको आये थे।"

माँने पूछा, "इस समय क्या कर रहे हैं?"

लड़कीने कहा, "अभी तक उठे नहीं हैं। अपनी कोठरीमें सोये हुए हैं।"

उसकी माँ और कुछ न पूछकर अपने काम-धन्धेमें लग गई। गोकुलने दरवाजेमेंसे सिर निकालकर हाथ हिलाकर लड़कीको अपने पास बुला लिया और पूछा, "क्यों हिमू, तरी दादीने चाचासे क्या कहा?"

हिमूने सिर हिलाकर कहा, "मैं नहीं जानती बाबूजी।"

फिर भी गोकुलने पूछा, "शायद खूब बिगड़ी थीं, क्यों?"

हिमूने अनिश्चित भावसे एक दो बार सिर हिलाकर अन्तमें न जाने क्या सोचकर कह दिया, "हाँ।"

गोकुलने कुछ व्यग्र होकर हेमांगिनीका एक हाथ पकड़कर उसे कमरेके अन्दर खींच लिया और धीरेसे कहा, "हाँ बेटी, बता तो, तेरी दादीने चाचासे क्या क्या कहा?"

बेचारी हिमू विपत्तिमें पड़ गई। जिस समय उसके चाचा आये थे, उस समय वह सो रही थी, इस लिए कुछ भी न जानती थी। कह दिया, "नहीं जानती।"

परन्तु गोकुलको विश्वास नहीं हुआ। उसने अप्रसन्न होकर कहा, "अभी तो तू कहती थी कि जानती हूँ। शायद माँने तुझे मना कर दिया है, क्यों? बता दे न बेटी, मैं किसीसे नहीं कहूँगा।"

जिरहमें पड़कर बेचारी हिमू सिर्फ भौंचक होकर देखती रह गई। गोकुलने उसके सिर और मुँहपर हाथ फेरते हुए और उत्साह दिलाते हुए कहा, "हाँ बताओ तो बेटी, क्या क्या बातें हुई थीं। माँने शायद कहा था कि तू घरसे निकल जा!—यह ले रुपये; इससे तू अपने वास्ते गुड़िया खरीदियो।" यह कहकर गोकुलने तकियेके नीचेसे दो रुपये निकालकर हिमूके हाथपर रख दिये। हिमूने सूखे कंठसे कह दिया. "हाँ, कहा था।"

"फिर उसके बाद?"

हिमूको कुछ रुलाई-सी आने लगी। वह बोली, "फिर क्या हुआ, सो तो मैं नहीं जानती।

गोकुलने फिर उसके मुँह और सिरपर हाथ फेरते हुए कहा, "जानती नहीं? जानती तो है, बता तेरे चाचाने फिर क्या कहा?"

"कुछ नहीं कहा।"

गोकुलको फिर भी विश्वास नहीं हुआ। उसने कुछ बिगड़कर कठोरतापूर्वक पूछा, "क्या तेरे चाचाने कुछ भी नहीं कहा? ऐसा कहीं हो सकता है?"

पिताका क्रोधपूर्ण कण्ठस्वर सुनकर हिमू प्रायः रोकर बोली, "बापूजी, मैं नहीं जानती।"

गोकुलने और भी बिगड़कर कहा, "फिर कहती है जानती नहीं! पाजी कहींकी!" और उसने तड़ाकसे गालपर एक तमाचा जमा दिया। कहा, "चल, हट, दूर हो यहाँसे।"

लड़की रोती हुई चली गई।

गोकुल जल्दीसे नीचे उतरा और अपनी विमाताके कमरेमें पहुँचकर कहने लगा, "वाह, बहुत अच्छा किया! अभी उसे घरमें आते देर नहीं हुई कि तुमने उसे उलटी-सीधीं सुनाना शुरू कर दिया। यही न कि जिससे मेरी तरफसे उसका मन फिर जाय? मैंने सारा हाल सुन लिया है। पर अब तुम अपने लड़केको भी सावधान कर देना जिससे वह मेरे सामने न आवे।"

इतना कहकर गोकुल उलटे पाँव जल्दी जल्दी बाहर चला गया। भवानीकी समझमें कुछ भी न आया और वह अवाक् होकर देखती रह गई।

बाहर लोग तरह तरहके कामोंमें लगे हुए थे। गोकुल पहले तो कुछ देर तक इधर-उधर करता रहा, फिर उसने मनुआकी माँको अपने पास बुलाकर कहा, "मनुआकी माँ, भइया घर आ गया है। सुना है?"

दासीने गरदन हिलाते हुए कहा, "हाँ बाबूजी, बड़ी रात गये छोटे बाबू घर आये हैं।"

"अरे, यह तो मैं भी जानता हूँ। पर इसके बाद माँ-बेटेमें क्या क्या बातें हुई? शायद मेरी तरफसे माँसे खूब लगाया-बुझाया होगा। घरसे निकल जानेकी बात—"

दासीने बीचमें ही रोककर कहा, "नहीं भइया, माँ तो उठी भी नहीं। जद्दू उनका बेग उठा लाया और मैंने उनका कमरा खोलकर लम्प जला दिया। बस, तभीसे वे जो अपने कमरेमें गये हैं, सो अब तक बाहर ही नहीं निकले।"

पर गोकुलने अविश्वास करके कहा, "अरे क्यों मुझसे छिपाती है ? मैंने सब हाल सुन लिया है।"

गोकुलकी बात सुनकर बुढ़िया चकित होकर कुछ देर तक देखती रही। इसके बाद मुनुआकी कसम खाकर बोली, "बाबूजी, ऐसी बात मत कहो। मैं तो बराबर वहीं थी और छोटे बाबूके सब काम मैं ही करती रही। उन्होंने खुद ही मना कर दिया था कि माँको मत बुलाओ। और यह भी कहा था कि अब किसी चीज़की जरूरत नहीं है। खाली लम्प जला दो और जाकर सो रहो।—हाय हाय, उनकी आँखें बैठ गई हैं और चेहरा बिलकुल काला पड़ गया है।"

गोकुलकी आँखोंमें आँसू छलछला आये। वह बोला, "तू कहती क्या है मुनुआकी माँ! काला क्यों न पड़ जायगा ? बाबूजी मर गये और लड़का अन्त समय उन्हें देख भी न सका और एक पैसे तककी जमा उसे मिली नहीं। उसके मनपर जो बीतती होगी, उसे वही जानता है। बाबूजीको वह कितना चाहता था, यह तो तुम सब लोग जानती हो। क्यों मुनुआकी माँ, ठीक कहता हूँ न ?" यह कहते कहते गोकुलकी आँखोंसे आँसू निकल पड़े। मुनुआकी माँ बहुत दिनोंकी दासी है। गोकुलकी आँखोंमें जल देखकर उसकी आँखोंमें भी जल भर आया। उसने भर्राये हुए गलेसे कहा, "हाँ भइया, ठीक है। छोटे बाबू तो बाबूजीके वास्ते जान देते थे। लेकिन क्या करें, उन्हें इतनी पढ़ाई करनी पड़ी है कि उनका दिमाग कुछ गरम हो गया है। इसीसे—"

अब तो गोकुल मानों मुनुआकी माँके पीछे पड़ गया। वह बोला, "हाँ, यही तो बात है। भला उसका दिमाग गरम न होगा ? विद्या क्या उसने कम सीखी है ? वह आनर ग्रेजुएट है ! यहाँ हुगली, चिंचुड़ा और बाबूगँजमें ऐसे कितने आदमी हैं जिन्होंने मेरे भाईके बराबर विद्या सीखी हो ?—कोई हो तो लाकर दिखलावे ! लाट साहब खुद आकर उसे हाथ पकड़कर बैठाते हैं, वह क्या कोई ऐसा वैसा आदमी है ? तू तो एक दासी है, पर फिर भी कलकत्ते जाकर कह तो सही किसी भले आदमीसे कि 'मैं विनोद बाबूके घरकी दासी हूँ' फिर देख, वह तुझे किस तरह खातिरसे ले जाकर बैठाता है और हजार तरहकी बातें पूछता है। पर यहाँ तो वही कहावत है कि घरका जोगी जोगीड़ा, बाहरका जोगी सिद्ध। यहाँपर ऐसा कौन है जो उसकी कदर करे ? तूने अच्छी तरह देखा था न कि उसका मुँह-उँह सब सूख गया है ?"

दासीने सिर हिलाकर कहा, " उनके मुँहकी ओर देखनेसे तो रुलाई आती है बड़े बाबू ! "

गोकुलकी आँखोंसे झर-झर आँसू बहने लगे। उसने अपने छोटे-से दुपट्टेसे आँसू पोंछते हुए कहा, " मुनुआकी माँ, तूने ही उसे पाल-पोसकर बड़ा किया है और तू ही उसे पहिचान सकी है। आहा ! उसका सारा समय हँसी-खेलमें और सुखसे रहकर लिखने-पढ़नेमें ही बीता है। इस तरहके उपद्रवोंमें उसे पड़ना ही कब पड़ा है ? और क्या वसीयतनामा लिख जानेसे ही उसे जायदाद नहीं मिलेगी ! क्या जायदाद उसके बापकी नहीं है ? देखूँ तो कौन साला उसे लेनेसे रोकता है ! आखिर क्या किया है उसने ! चोरी की है, या डाका डाला है !—खून किया है ! किस सालेने देखा है ! तो फिर क्यों जायदाद नहीं पायेगा ! क्या आईन-अदालतें दुनियासे उठ गईं ! विनोद अगर नालिश करे, तो मुझको ही पाई पाईके हिसाबसे आधा आधा हिस्सा करके देना पड़े, यह जानती है ? " दासी हाँमें हाँ मिलाते हुए बोली, ,, हाँ बाबू, देना क्यों न पड़ेगा ! "

मारे उत्साहके गोकुलका मुख और आँखें चमकने लगीं। वह बोला, " सो फिर वही कह न। और जरा इस माको तो देख। अरे भाई, तुम औरत ठहरीं; औरतोंकी तरह क्यों नहीं रहतीं ! भला तुम क्यों वसीयतनामा लिखनेकी सलाह देने गईं ! यह क्या कोई योग्य काम हुआ ? क्या धर्म नहीं है ? क्या बाबूजी यह सब देख नहीं रहे हैं ! यदि निर्दोषको कष्ट दोगी तो क्या उनके सामने तुम्हें जवाब नहीं देना होगा ! और जो जायदादकी बात कहो, सो जायदाद ही ऐसी कौन बहुत बड़ी है ! आज नहीं तो कल जब वह हाईकोर्टका जज होगा—और उसे जज होनेसे कोई रोक तो सकेगा ही नहीं—तब किस तरह दबा रखोगी उसकी जायदाद ? क्या इन सब बातोंको सोच-विचारकर काम न करना चाहिए ! अगर इस समय इज्जतसे उसका हिस्सा उसे न दिया जायगा तो उस समय बेइज्जती कराके देना पड़ेगा ! "

मुनुआकी माँ बहुत प्रसन्न हुई। उसने विनोदको पाल-पोसकर बड़ा किया था। यह वसीयत फसीयत उसे बिलकुल अच्छी नहीं लगी थी। उसने कहा " लेकिन बड़े बाबू, तो फिर तुम्हीं क्यों नहीं छोटे बाबूको बुलाकर उनसे कहते कि भाई, तुम अपनी जायदाद ले लो ! तुम दे दोगे, तो फिर और किसकी ताकत है जो 'ना' कहे ? "

परन्तु यहींपर गोकुलके मनमें असल खटका था। उसने कुछ देर तक देखते रहनेके बाद कहा, "लेकिन सभी लोग कहते हैं कि उसे जायदाद देना मेरे अधिकारके बाहर है। मुनुआकी माँ, मुश्किल तो यह है कि मैं बाबूजीका वसीयतनामा रद नहीं कर सकता। तुम्हारी बड़ी बहूके ममेरे भाई एक बहुत बड़े मुख्तार हैं। उन्होंने अपनी बहनको चिट्ठी लिखी है कि अगर मैं वह वसीयतनामा रद करूँगा तो मुझे जेल जाना पड़ेगा। हाँ, यदि माँ राजी हों और तुम्हारी बड़ी बहू राजी हो, तब अलबत्ता कुछ हो सकता है।"

पर मुनुआकी माँ इस बातका कोई ठीक उत्तर नही दे सकती थी, इसलिए वह अपने कामसे चली गई।

ज्यों ही गोकुलने उधरसे मुँह फेरा, त्यों ही उसे दिखाई पड़ा कि हिमू खेलने जा रही है। उसने बड़े प्यारसे उसे अपने पास बुलाकर पूछा, "क्यों बेटी, तेरे चाचा सोकर उठे?"

हिमूने गरदन टेढ़ी करके कहा, "हाँ, उठते ही अपने बैठकके कमरेमें चले गये हैं, किसीसे बोले नही हैं।"

मकानके एक कोनेमें सड़कके किनारे विनोदका कमरा था। वह अँगरेजी ढंगसे सजा हुआ था। उसीमें उसके मित्र आदि भेंट करनेके लिए आते थे। गोकुलने दबे पाँव वहाँ पहुँचकर जंगलेमेंसे अंदरकी ओर देखा कि विनोद कुरसीपर नहीं बल्कि जमीनपर दूसरी तरफ मुँह किये चुपचाप बैठा है। उसके बैठनेका यह ढंग देखकर ही गोकुलकी आँखोंमें जल भर आया। वह अपने छोटे भाईका मुख देखनेकी आशासे पाँच छह मिनट तक चुपचाप खड़ा रहा और अन्तमें अपने आँसू पोछकर लौट आया।

रसिक चक्रवर्तीने कहा, "बड़े बाबू, वह अध्यापकों और पंडितोंकी बिदाईकी फरद—"

गोकुलको सहसा मानों अन्धकारमें प्रकाशकी रेखा दिखाई पड़ी। वह जल्दीसे बोला, "भाई, अब तुम इन सब बातोंमें मुझे क्यों घसीटते हो! सरस्वती देवी तो अब स्वयं ही आ पहुँची हैं। विनोदसे तो यह बात छिपी नही है कि कौन कैसा पंडित है और किसकी कितनी मान-मर्यादा है। उसीसे पूछकर सब बातें क्यों नहीं कर लेते? अब मैं इन सब बातोंमें हाथ नहीं डालूँगा।"

रसिक चक्रवर्तीने कहा, "लेकिन छोटे बाबू तो अभी तक सोकर ही नहीं उठे।"

गोकुलने म्लान भावसे कुछ मुस्कराकर कहा, "सोकर नहीं उठे? अरे उसे कहीं भूख-प्यास और नींद है भी? जरा मुनुआकी माँको बुलाकर पूछो, उसने अपनी आँखों देखा है। कहती है कि छोटे बाबूकी ओर देखकर आँसू रोके नहीं रुकते, ऐसा उनका चेहरा हो गया है। (विनोदके कमरेकी ओर इशारा करके) जरा वहाँ जाकर देखो तो सही। ठंढी जमीनपर अकेला चुपचाप बैठा हुआ है। भला तुम्हीं बतलाओ, उसे देखकर किसकी छाती न फटेगी!"

रसिक चक्रवर्ती दुःख-सूचक कोई बात अस्फुट स्वरमें कहकर और फरद लेकर जाने लगे, तो गोकुलने उन्हें लौटाकर कहा, "तुम तो सभी बातें जानते हो, इसी लिए तुमसे पूछता हूँ कि मेरे रहते हुए विनोदको इतना कष्ट क्यों दिया जाय? भला उपवास आदि उसके बीमार शरीरको सहन होगा? कहीं वह और बीमार पड़ गया? मैं तो कहता हूँ कि वह सदा जिस तरह खाता-पीता सोता रहा है, उसी तरह रहे।"

रसिक चक्रवर्तीने कुछ निरुत्साह होकर कहा, "यदि उनसे न हो सकेगा तो—"

पर गोकुलने उसे वह बात समाप्त न करने दी और बीचमें ही रोककर कहा, "भला तुम्हीं बतलाओ कि कैसे हो सकेगा? हम लोगोंकी तो यह कुली मज-दूरोंकी देह है, हम सब कुछ सहन कर सकते हैं। लेकिन उसकी तो वैसी नहीं है। जो पाँच सात इम्तिहान पास करके देशके सिरका मणि हुआ है, तुम उसके शरीरकी मेरे शरीरसे तुलना करने बैठ गये? अरे कौन है रे उधर—भुतुआ? जा तो जरा, भट्टाचार्यजीको जल्दीसे बुला ला। न होगा तो, श्राद्धके समय जितना रुपया लगता है, नकद ही रख दूँगा। इसके लिए मैं अपने माँ-जाए भाईको मार तो डालूँगा नहीं। मैं उसे अरवा चावलका हविष्य खिलाकर समाप्त नहीं कर सकता, इससे भले ही जिसके जीमें जो आवे सो कह ले।"

चक्रवर्तीने बहुत ही अप्रतिभ होकर अपने मालिककी बातका समर्थन करते हुए कहा, "हाँ आपका कहना तो ठीक है। लेकिन लोग कहेंगे कि—"

गो०—(बात काटकर) लेकिन क्या तुम यह समझते हो कि लोगोंकी बातोंका खयाल करके मैं अपने भाईको मार डालूँगा? भला यह तुम लोगोंकी

कहाँकी समझदारी है ! नहीं नहीं, अभी वह फरद लेकर उसे तंग करनेकी जरूरत नहीं। पहले वह थोड़ा बहुत खा-पीकर अपनी तबीयत तो सँभाल ले।

इस प्रकार उस बेचारेपर गोकुल व्यर्थ ही बिगड़ता हुआ वहाँसे चला गया।

८

ब्राह्मणके हाथसे चायका प्याला लेकर विनोदने दूर फेंक दिया। लेकिन वह चाय कितने गुप्त रूपसे तैयार हुई थी और उस प्यालेने गिरकर किसके कलेजेपर कितनी चोट पहुँचाई, इसे केवल अन्तर्यामीने ही देखा।

दिन-भर विनोद सभी लोगोंके साथ कुछ न कुछ बात-चीत करता रहा, पर अपने बड़े भाईकी परछाँही देखते ही वह खिसक जाता रहा। पर साथ ही वह छाया भी उसे क्षण-भरका अवकाश नहीं देती रही। विनोद मुँह फेरकर जिस तरफ चला जाता था, गोकुल किसी न किसी कामसे अचानक उसी तरफ जा पहुँचता था। ऐसा होते होते दिन ढल आया।

तीसरे पहर विनोद अपनी बैठकमें अकेला ही बैठा हुआ था। इतनेमें हाथमें एक कागज लिये हुए गोकुल भी वहाँ जा पहुँचा और अकारण ही कुछ सूखी हँसी हँसकर बोला, "तुम अपना कलकत्तेवाला मकान छोड़कर अचानक हज़ारीबाग चले गये थे। बाबूजी मरते समय—वह सब हाल तो तुमने सुना ही होगा—वह भी एक तमाशा था और क्या!—लेकिन तुम्हारी भी अजब हालत है, हम लोगोंको खबर तक न दी! पर उसे जाने दो। ये सब बातें फिर होती रहेंगी। अभी यह काम धन्धा निपट जाय। एक दान-पत्र लिख देनेसे ही—समझ गये न विनोद,—थोड़ेसे रुपये तो व्यर्थ खर्च हो जायँगे, लेकिन—समझ गये न—और यहाँके लोग ऐसे बदमाश हैं—तुम तो सब जानते हो—समझ गये न भैया—लेकिन यह सब कुछ नहीं हैं—बाबूजी भी कह गये हैं, सब जायदाद तुम दोनों भाइयोंकी है—यह तो सिर्फ—समझ गये न—सो इसे जाने दो—इसके कारण कुछ रुकेगा नहीं—और भाई, यह तो तुम जानते ही हो कि मेरे मिजाजका कुछ ठिकाना नहीं है। लो, यह लोहेके सन्दूककी चाबी तुम अपने पास रक्खो। और, सब पण्डितोंको बुलाया गया है। किसे कितनी बिदाई देनी होगी, किसका कितना सत्कार करना होगा, यह सब तुम ठीक न कर दोगे, तो और किसीसे न होगा और मुझे तो इतनी

भी फुरसत नहीं है कि दो-चार मिनट खड़ा रहकर तुम्हारे साथ कुछ सलाह-मशविरा भी कर सकूँ।"

यह कहकर गोकुलने वह चाबी और कागज विनोदके सामने रखकर जल्दीसे वहाँसे जाना चाहा। जबसे सोकर उठा है तबसे वह इन्हीं सब बातोंको मन ही मन मश्क कर रहा था। विनोदने उन्हें हाथसे हटाते हुए कहा, "आप मुझे इन सब कामोंमें मत डालिए, मैं इन्हें छुऊँगा भी नहीं।"

क्षण-भरमें ही गोकुलके मुखकी हँसी पत्थरकी तरह जम गई और उसकी सारे दिनकी जल्पना-कल्पनाओंने व्यर्थ हो जानेकी तैयारी की। बोला, "छुओगे नहीं? क्यों?"

मुझे छूनेकी जरूरत ही क्या है! मैं बाहरी आदमी ठहरा। दो दिनके लिए आया हूँ और दो दिन बाद ही चला जाऊँगा।"

"चले जाओगे?"

"जाना ही पड़ेगा। और फिर यह सब रुपये-पैसेका मामला ठहरा। मैं दीन दुखी आदमी हूँ। अगर कहीं ठीक ठीक हिसाब न दे सका, तो आप मुझे चोर बनावेंगे और शायद मुझे पुलिसके हवाले करके जेल भी भेजवा देंगे।"

विनोदकी इस बातका उत्तर देनेके लिए गोकुलके होंठ एक बार फड़के जरूर, पर दे न सका। इसके बाद वह चाबी और कागज उठाकर वहाँसे चला गया। वह चाहता था कि मैं अपने पिताका श्राद्ध खूब ठाठ-बाटसे करके खूब नाम करूँ। पर अब उसकी यह इच्छा मन ही मन मृग-मरीचिकाके समान लुप्त हो गई।

आज सबेरेसे ही उसका उत्साह और चीखना-चिल्लाना कहीं विराम न लेना चाहता था। पर जब सन्ध्या होते ही वह अचानक अपने कमरेमें आकर अपने कम्बलवाले बिस्तरपर चुपचाप लेट गया, तो उसकी स्त्रीको बड़ा विस्मय हुआ।

"क्या तबीयत कुछ खराब है?"

गोकुलने उदास भावसे कहा, "नहीं, ठीक है।"

"तो फिर इस तरह लेटे क्यों हो?"

गोकुलने कोई उत्तर न दिया, तब मनोरमाने फिर पूछा, "देवरके साथ कुछ बात-चीत हुई थी?"

गोकुलने कहा, "नहीं।"

तब मनोरमा पास ही जमीनपर अच्छी तरह आसन जमाकर बैठ गई और बहुत धीरेसे बोली, "तुमने भी कुछ सुना कि देवर क्या कहते फिरते हैं ?"

गोकुल चुप रहा, तब मनोरमाने जरा और आगे खिसककर कहा, "कहते हैं कि बाबूजीकी बीमारीका तो कोई हाल मुझे मिला ही नहीं। हजारीबाग या न जाने कहाँ बतलाते थे—न जाने कितने कितने फरेब जानते हैं तुम्हारे ये भैया—"

गोकुलने नितान्त निरीह भावसे पूछा, "फरेब कैसा ? क्या तुम्हें विश्वास नहीं होता ?"

"मुझे ? मैं क्या कोई अनजान बच्ची हूँ ? वे गले तक गंगाजीमें खड़े होकर कहें, तो भी मैं विश्वास न करूँ।"

यह बात गोकुलको बहुत ही बुरी मालूम हुई। उसके इस असाधारण आनर ग्रेज्युएट कुल-प्रदीप भाईके विरुद्ध यदि कोई जरा-सी भी बात कहता था तो वह तुरन्त ही बिगड़ जाता था। परन्तु आज उसे जो हार्दिक व्यथा हुई थी उसके कारण उसका सारा शरीर अवसन्न हो रहा था और इसी लिए वह चुप रह गया। कमरेमें एक दीआ तो जल रहा था, पर उसका प्रकाश उतना तेज नहीं था, इस लिए मनोरमा अपने पतिके मुखसे उसके मनका भाव ठीक तरहसे न समझ सकी और बोली, "देखो, तुम बहुत सावधान रहना। इस समय बहुत तरहके छल-छन्द रचे जायँगे। लेकिन तुम उनपर कान न देना। बिना बाबूजीसे पूछे कोई काम न कर बैठना। वे कल सबेरेकी गाड़ीसे यहाँ आ पहुँचेंगे। मैंने उन्हें चिट्ठीमें बहुत तरहसे लिख दिया है। तुम चाहे जो कहो, पर जब तक बाबूजी यहाँ न आ जायँगे, तब तक मेरे मनका डर दूर न होगा।"

गोकुल चट उठकर बैठ गया और बोला, "क्या तुम्हारे बाबूजी आ रहे हैं ?"

"आवेंगे नहीं ? नहीं आवेंगे तो यह सब बखेड़ा सँभालेगा कौन ? नीमतल्लेवालोंकी जो आढ़त है, बाबूजी ही तो उसके सर्वेसर्वा हैं; किन्तु इससे क्या वे ऐसी आपत्तिके समय अपनी लड़की और दामादको छोड़ देंगे ?"

गोकुल चुपचाप सुनता रहा। मनोरमा बहुत ही प्रसन्न और उससे भी अधिक उत्साहित होकर कहने लगी, "दूकान वगैरहका जितना काम है, वह सब तुम उन्हींपर छोड़ दो। बस, फिर और किसीके देखने-सुननेकी जरूरत ही नहीं रह जायगी। जब कोई बात आ पड़े, तब कह देना कि मैं कुछ नहीं

जानता, बाबूजी जानें। बस। फिर चाहे देवर हों और चाहे कोई हो, किसीकी मजाल नहीं जो उनके सामने चूँ भी कर सके। समझ गये न ?"

इतना कहकर मनोरमाने बहुत ही अर्थपूर्ण दृष्टिसे अपने स्वामीको ओर देखा। यह तो नहीं कहा जा सकता कि उस म्लान प्रकाशमें गोकुलकी अपनी स्त्रीकी वह दृष्टि दिखाई पड़ी या नहीं, पर उसने 'हाँ' 'ना' कुछ न कहा। इसके बाद जब मनोरमाने और भी अनेक बढ़िया बढ़िया बातें करनेपर भी स्वामीसे कोई उत्तर न पाया, तब हवाका रुख किस तरफ है, इसका उसे पता न लग सका और वह कमसे कम उस रातके लिए चुप हो रही। दूसरे दिन सबेरे ही गोकुल अतिशय व्यस्त भावसे अपनी माँके कमरेके सामने जा खड़ा हुआ और बोला, "माँ, क्या विनोद लोहेके सन्दूककी चाबी तुम्हारे पास रख गया है ?"

भवानीने संक्षेपमें उत्तर दिया, "नहीं तो।"

चाबी वस्तुतः गोकुलके ही पास थी। पर उसने किसी और ही मतलबसे झूठ-मूठ अपनी माँसे यह बात पूछी थी। उसने सोचा था कि माँ जब यह सुनेंगीं कि मैंने लोहेके सन्दूककी चाबी विनोदको दे दी है, तब वे अवश्य ही बहुत घबरा जायँगी। परन्तु अपनी माँके इस संक्षिप्त उत्तरके सामने उसकी सारी चालाकी मानों बह गई। तब उसने कुछ उदासी प्रकट करते हुए धीरे धीरे कहा, "न जाने उसीने वह चाबी कहीं रख दी या मैंने ही कहीं गिरा दी।"

पर भवानीने इसपर भी कुछ नहीं कहा। जब माँने यह सुन लेनेपर भी कुछ उद्वेग प्रकट नहीं किया कि भीड़-भाड़वाले मकानमें सन्दूककी चाबी नहीं मिलती और जब उसने आँख उठाकर यह भी नहीं देखा कि उसकी इस एकान्त निर्लिप्तताके कारण गोकुलके हृदयपर कैसा आघात हुआ है, तब उसकी समझमें बिलकुल न आया कि अब मैं और क्या कहूँ और किस प्रकार मैं अपनी माँको घर-गृहस्थीके सम्बन्धमें सचेत करूँ। कुछ देरतक चुपचाप खड़े रहनेके बाद उसने कहा, "शम्भू और दरबारी दोनों बुआ वगैरहको लाने गये थे, लेकिन वे लोग अभीतक नहीं लौटे।"

भवानीने कोमल स्वरसे कहा, "क्या बताऊँ, क्यों नहीं आये।"

"माँ, यह तो बड़ा अच्छा हुआ कि तुमने आदमी भेजनेके लिए कह दिया था। अब यदि वे न आवें तो उनकी इच्छा, हम लोग तो दोषसे मुक्त

हो गये। माँ, मुझे तो इसी बातका बहुत आश्चर्य होता है कि तुम कितनी दूर तककी बात सोचती हो। अगर तुम न होतीं तो हम लोगोंका—”

भवानी फिर भी चुप रही। गोकुलकी इस बातसे भी उसके गम्भीर विषण्ण मुखपर सन्तोष या आनन्दकी लेश मात्र दीप्ति प्रकट न हुई। गोकुल बहुत देर तक वहीं चुपचाप खड़ा रहा और अन्तमें धीरे धीरे चला गया।

बाहर आते ही गोकुल बहुत ही घबड़ा-सा गया। क्योंकि इसी बीच जिलेके नये डिप्टी और कई वकील-मुख्तार जो निमन्त्रित किये गये थे, आ पहुँचे थे और विनोद उन लोगोंके पास बैठकर मृदु-कण्ठसे बातचीत कर रहा था।

इन खास खास भले आदमियोंको अपने छोटे भाईका परिचय देनेका अवसर पानेके लिए गोकुल आतुर हो रहा था। पर विनोद सामने बैठा था और उसकी उपस्थितिमें वह यह कह नहीं सकता था कि इसने कैसे बड़े बड़े इम्तिहान पास किये हैं, क्योंकि वह इससे अत्यन्त क्रुद्ध हो उठता है।

गोकुलने कुछ देर तक इधर उधर करके अफसरोंके सामने खूब झुककर सलाम किया और बहुत ही विनयपूर्वक कहा, “यही मेरा छोटा भाई विनोद है। यह ऑनर ग्रेज्युएट है।”

विनोदने कुछ क्रोधपूर्ण दृष्टिसे अपने बड़े भाईके मुखकी ओर देखा। पर गोकुलने उसकी ओर जरा भी ध्यान न दिया। उसने उन लोगोंसे हाथ जोड़कर कहा, “यह मेरा बहुत बड़ा सौभाग्य है कि आप लोग आये।—विनोद, तुम आप लोगोंके साथ अँगरेजीमें बात-चीत क्यों नहीं करते? आप लोग हाकिम और अफसर ठहरे। आप लोगोंसे देशी भाषामें बात-चीत करना क्या शोभा देता है? अगर चार आदमी सुनेंगे, तो क्या कहेंगे!”

आस-पासके भले आदमियोंने सिर उठाकर देखा। डिप्टी साहब कुछ संकुचित और कुण्ठित हो गये और असह्य लज्जाके कारण विनोदका मुँह और आँखें लाल हो गईं। वह अपने बड़े भाईका स्वभाव बहुत अच्छी तरह जानता था और समझता था कि यदि इन्हें रोका न जायगा तो वे इसी तरहकी बातें करते करते न जाने कहाँके कहाँ जा पहुँचेंगे। उसने गोकुलसे कहा, “जरा एक बात सुनिए।” और तब वह उसका हाथ पकड़कर प्रायः खींचकर ही एक ओर ले गया और बोला, “भइया, क्या आप मुझे इसी समय मकानसे निकाल देना चाहते हैं? अगर आप इस तरहकी बातें करेंगे, तो मैं क्षण-भर भी यहाँ न ठहर सकूँगा।”

गोकुलने डरकर पूछा, "क्यों, क्या हुआ?"

"मैं तो कभीसे कहता आ रहा हूँ कि आपका यह अत्याचार मुझसे नहीं सहा जाता। लेकिन फिर भी क्या आप किसी तरह मुझे छुटकारा न देंगे! जानते हैं, मेरी तरह इम्तिहान पास किये हुए लोग गली गली मारे मारे फिरते हैं!" यह कहकर विनोद क्षोभ और खीझसे मुख विकृत करके अपनी जगहपर आ पहुँचा।

गोकुल लज्जाके कारण अप्रतिभ होकर अन्यत्र चला गया। शायद वह चलते समय यह भी कह गया कि अब आगेसे ऐसा काम न करूँगा। कोई आध घण्टे बाद विनोदने और शायद उसके पास बैठे हुए और भी बहुत-से लोगोंने सुना कि गोकुल चिल्लाकर किसी नौकरको सावधान करता हुआ कह रहा है, "देखो, छोटे बाबूका आनर ग्रेजुएटवाला सोनेका मेडल कहीं ये लोग हाथमें लेकर खराब न कर डालें!"

डिप्टी साहबने जरा मुस्कराते हुए विनोदके मुखकी ओर देखा और फिर दूसरी तरफ मुँह फेर लिया।

९

नीमतल्लेवालोंकी आढ़त सूनी छोड़कर गोकुलके ससुर आ पहुँचे। उनके सिरके बाल सफेद और मूँछोंके काले थे। कद नाटा और शरीरकी गठन कुछ भद्दी और भौंडी-सी थी। बहुत ही चलती हुई रकम थी। आढ़तमें काम करनेवाले लड़के उन्हें 'जहाजी कौआ' कहा कहते थे। घड़ी-भरमें ही वे श्राद्धघरके कर्ता-धर्ता बन गये और उन्होंने दो घण्टेके अन्दर ही मुहल्ले-भरके सभी लोगोंके साथ आलाप-परिचय कर डाला। ऐसा कारगुजार और हिसाबिया ससुर पाकर गोकुल फूल उठा। रिश्तेदारों और जान पहचानवाले सभी लोगोंने सुना कि अपनी लड़की और दामादका बहुत अधिक अनुरोध टाला नहीं गया और इसी लिए वे यहाँका सारा कारोबार सँभालनेके लिए दया करके चले आये हैं।

रात एक पहर बीत चुकी है, सब लोगोंका खाना-पीना प्रायः समाप्त हो चुका है कि इतनेमें नौकरने आकर समाचार दिया कि मालिक बुला रहे हैं। गोकुल चटपट अदब कायदेसे उनके सामने जा पहुँचा। ससुर निमाईराय अपनी नातिनको साथ लिये हुए एक कीमती कालीनपर बैठे जल-पान कर

रहे थे। पास ही मनोरमा मुँहपर कुछ यों-ही-सा घूँघट डाले हुए अपने पिताको सौतेली सासका असल परिचय दे रही थी । ठीक ऐसे ही समयमें गोकुल वहाँ आ खड़ा हुआ।

ससुरजीने खीरकी भरी कटोरी एक ही सड़प्पेमें साफ करके और उसी कटोरीके किनारेसे अपनी मूँछें पोंछते हुए आँख उठाकर कहा, “बेटा, मैं एक बात पूछता हूँ। हाथसे निकला हुआ तीर और मुँहसे निकली हुई बात क्या फिर लौटाई जा सकती है ?”

गोकुलने हतबुद्धि होकर उत्तर दिया, “जी नहीं।”

निमाईने पहले तो अपनी कन्याकी ओर देखा और तब स्निग्ध-गम्भीर हँसीके बाद अपने दामादकी ओर देखकर कहा, “तो फिर ?”

गोकुल आकाश-पाताल छान डालनेपर भी इस ‘तो फिर’ का उत्तर न ढूँढ़ सका, इसलिए चुप हो रहा। अब निमाई बाबू धीरे-धीरे अपनी भूमिका बाँधनेकी फिक्र करने लगे। उन्होंने कहा, “बेटा, यह ठहरी लड़की और तुम ठहरे लड़के। तुम लोगोंने रो-गाकर मुझे इस तूफानमें नावका पतवार थामनेके लिए बुला लिया है। सो मैं पतवार तो थाम सकता हूँ, थामूँगा ही। लेकिन बेटा, तुम्हारे अस्थिर रहनेसे काम न चलेगा। तुम्हें तो यही मुनासिब है कि जब जहाँ बैठनेके लिए कहूँ, तव वहाँ बैठो; और जब जहाँ खड़े रहनेके लिए कहूँ, तब वहाँ खड़े रहो। तभी तो इस समुद्रसे पार हुआ जा सकेगा। ‘विनोद भैया हजारीबागमें थे’ इस तरहकी असम्बद्ध बातें जिस तिससे कहते फिरते हो, सो यह सब क्या हो रहा है ! क्या इतना भी नहीं समझ सकते हो कि यह तुम आप ही अपने पैरोंमें कुल्हाड़ी मार रहे हो ?”

पिताका व्याख्यान सुनकर मनोरमा गद्‍गद हो गई और फुसफुस करके कहने लगी, “बाबूजी, यही तो हो रहा है और इसी लिए तो तुमको बुलवा लिया है। हम लोग कुछ नहीं जानते। तुम जो कहोगे जो करोगे, वही होगा। हम लोग कभी यह भी न पूछेंगे कि तुम क्या करते हो और क्या नहीं करते।”

बाबूजीने खुश होकर कहा, “बस बेटी, यही तो मैं चाहता हूँ। मामला मुकदमा बहुत बेढब होता है। तुमने सुना नहीं लोग अपने दुश्मनको गाली देते हुए कहते हैं कि ‘तुम्हारे घरमें मुकदमेबाजी हो।’ बस, वही मुकदमेबाजी अब तुम्हारे घरमें आ घुसी है। मेरा दिमाग बहुत पक्का है, इसी लिए यह साहस किया है कि तुम लोगोंको किनारे लगाकर ही यहाँसे जाऊँ; फिर चाहे इसके

लिए स्वयं मेरा कितना ही हर्ज क्यों न हो। मैं जब एक एक करके उन लोगोंको गर्दन पकड़कर बाहर कर दूँगा, तभी मेरा नाम निमाई राय सार्थक होगा।"

इतना कहकर निमाईने अपने मुखकी जो चर्या बनाई और उससे जितना गर्व प्रकट हुआ, उतना शायद उस समय वेलिंगटनके मुखपर भी प्रकट न हुआ होगा, जब वह वाटरलूकी लड़ाई जीतकर आया था। कुछ देर बाद उसने दरवाजेसे गरदन बाहर निकालकर इधर-उधर झाँका और फिर कहना आरम्भ किया, "बेटी, मेरे हाथपर जरा-सा जल डाल दो, मैं यहीं मुँह धो लूँ, बाहर नहीं जाऊँगा। और जरा यों ही एक बार बाहर जाकर देख आओ कि कहीं कोई इधर-उधर कान लगाये खड़ा तो नहीं है। कुछ कहा नहीं जा सकता—यह ठहरी शत्रुपुरी।"

मनोरमा निर्देशके अनुसार बाहरका चक्कर लगाकर फिर अपनी जगहपर आ बैठी। गोकुलके चेहरेपर हवाइयाँ उड़ रही थीं। वह कभी तो अपनी स्त्रीकी ओर और कभी अपने ससुरके ओर देखता था। इतनी देरतक बाप-बेटीमें जो सब बातें हो रही थीं उनका एक अक्षर भी वह नहीं समझ सका था। किसके घरमें मुकदमेबाजी घुसी है, किसकी गर्दन पकड़कर कौन घरसे निकालना चाहता है, किसका कैसा सर्वनाश हो रहा है, आदि इशारोंका बिन्दुमात्र भी तात्पर्य ग्रहण न कर सकनेसे उसे मानों काठ मार गया। निमाईने कहा, "बेटा, तुम खड़े क्यों हो? जरा स्वस्थ होकर बैठो, तो दो-चार बातें हो जायँ।"

गोकुल जहाँ खड़ा था, वहीं बैठ गया। ससुरजी कहने लगे, "बेटा, यही तुम लोगोंके लिए सबसे अच्छा समय है। जो कुछ कर सको, इसी समय कर डालो। लेकिन यह भी आँखोंके सामने दीख रहा है कि एक सत्यानाशी मुकदमा जरूर खड़ा होगा। सो खड़ा हुआ करे; मैं उससे नहीं डरता। इस बातको हाटखोलाके जद्दू बाबू वकील और तारिणी मुख्तार खूब अच्छी तरह जानते हैं। निमाई रायका नाम सुनकर बड़े बड़े वकीलों और बालिस्टरोंका भी मुँह सूख जाता है, फिर यह तो एक क्षुद्र लड़का है—इसने दो-चार पन्ने अँगरेजीके पढ़ लिये तो क्या हुआ?"

अब गोकुलसे नहीं रहा गया। उसने डरते डरते विनयपूर्वक पूछा, "आप किसका जिक्र कर रहे हैं! यह किसका मुकदमा है!"

अब तो निमाई रायके लिए अवाक् होनेकी नौबत आ गई। यह प्रश्न सुनते ही वे बहुत ही आश्चर्यके साथ गोकुलके मुँहकी ओर ताकने लगे।

मनोरमा व्याकुल होकर जोरसे बोल उठी, "देखा बाबूजी, जो कहती थी, वही बात है न ! यह पूछ रहे हैं कि किसका मुकदमा है ! बाबूजी, मैं तुम्हारी सौगन्ध खाकर कहती हूँ कि इनके जैसा सीधा और भोला आदमी सारी दुनियामें ढूँढ़े न मिलेगा। इन्हें ठगकर अगर देवर सर्वस्व छीन लें, तो यह कोई बड़ी बात है ? तुम आ गये हो, इसीसे भरोसा हो गया है। नहीं तो साल ही भरके अन्दर तुम देखते कि तुम्हारे नाती-नतनियाँ रास्तेपर खड़ी हैं।"

निमाईने ठंढी साँस लेकर कहा, "ऐसा ही जान पड़ता है, पर अब इन बातोंको छोड़ो। अब वह डर नहीं रह गया, मैं आ पहुँचा हूँ। लेकिन तुम्हारी आढ़तके इन रसिक वसिकको मैं सबसे पहले निकालूँगा। ये सब लोग हैं—दूल्हेकी मौसी और दुलहिनकी फुआ। समझ गई न बेटी ? अगर अन्दर अन्दर ये लोग तुम्हारे विनोदसे न मिले हुए हों तो मेरा नाम निमाई राय नहीं। अरे मैं तो आदमीकी परछाँही देखकर उसके मनकी बात जान लेता हूँ।"

इतना कहकर निमाई राय एक बार अपने दामादकी तरफ और तब एक बार अपनी लड़कीकी तरफ दृष्टिपात करने लगे।

मनोरमाने तुरन्त ही अपनी सम्मति देते हुए कहा, "हाँ हाँ, उन्हें अभी निकाल दो। बाबूजी, मैं जानती हूँ। लेकिन क्या करूँ, सुन-समझकर भी निर्बोध बनी बैठी हूँ। जिसे तुम्हारा जी चाहे, उसे रक्खो और जिसे जी चाहे, उसे निकालो। हम लोग कुछ न कहेंगे।"

इतनी देर बाद जाकर गोकुलकी समझमें सब बातें आईं। उसने समझा कि मेरा छोटा भाई विनोद मुझपर नालिश करनेके लिए षड्यन्त्र रच रहा है। इन लोगोंने तो उसका सारा मतलब समझ लिया है और मैं एक निर्बोधकी तरह उसी छोटे भाईको प्रसन्न करनेके लिए उसके पीछे पीछे घूमता फिरता हूँ। पहले तो उसके क्रोधकी आग मानों उसके ब्रह्म-रन्ध्रको भेदती हुई जल उठी; पर केवल एक मुहूर्तके लिए। फिर तुरन्त ही वह सारी आग ठंढी पड़ गई और उसके सामने चारों ओर ऐसा घोर अन्धकार छा गया जिसने उसकी दृष्टि, उसकी बुद्धि, उसके चैतन्यतकको मानो विपर्यस्त कर डाला। उसके दोनों कानोंमें मानो बहुत-से लोग क्रमशः चिल्ला चिल्लाकर कहने लगे कि विनोदने अदालतमें तुमपर मुकदमा दायर कर दिया है !

इतनेमें निमाईने कहा, "बेटा, इस समय रुपयेका मुँह देखनेसे काम न

चलेगा। गवाहोंको अपने हाथमें कर लेना चाहिए। सारा मुकदमा तो गवाहोंके हाथमें रहता है।"

गोकुल सिर झुकाये हुए पत्थरकी मूरतकी तरह बैठा रहा, समझा कि नहीं, इसका उसने कोई उत्तर न दिया। शायद ससुरजीकी बात उसके कानों तक पहुँची ही नहीं।

पर हाँ, मनोरमाके कानों तक अवश्य पहुँची। उसने उसपर गढ़ा-गढ़ाया तैयार हुक्म भी दे दिया। आखिर लड़की और दामाद ठहरे तो एक ही चीज़। यह ठीक है कि और विषयोंमें लड़कीके कह देनेसे ही काम चल सकता है, पर जब ससुरजीने देखा कि गवाहोंके लिए चोरीसे रुपये खर्च करनेके लिए दामादने खुला हुक्म नहीं दिया, तब उनके उत्साहकी प्रखरता बहुत कुछ मन्द पड़ गई। उन्होंने कहा, "अच्छा, अब कल परसों फिर किसी दिन धीरज और स्वस्थतासे इन सब बातोंकी सलाह कर ली जायगी, अभी तो तुम जाओ बेटा, हाथ-मुँह धोकर कुछ खाओ-पिओ। सारा दिन—"

ससुरजीकी बात पूरी भी नहीं होने पाई कि गोकुल अचानक वहाँसे उठकर चुपचाप बाहर चला गया। राय महाशयने अपनी लड़कीकी तरफ देखकर कहा, "इन्होंने तो कोई बात ही न की? मामला मुकदमा भी बिना रुपये पैसेके कहीं हो सकता है? दूसरे फरीके गवाह कहीं खाली हाथ तोड़े जा सकते हैं? भला खर्चसे इस तरह डरनेसे कैसे काम चलेगा?"

निमाई थे चलते पुरजे आदमी। आदमीकी छाया देखकर ही वे उसके मनकी बात समझ लेते थे। इस लिए उन्हें यह समझनेमें जरा भी देर न लगी कि गोकुल जो मेरी इतनी बातें सुननेपर भी बिलकुल चुप रह गया, वह केवल रुपये खर्च होनेके डरसे! लेकिन सिर्फ इसी बातका खयाल करके तो वे ऐसी घोर विपत्तिके समय अपनी लड़कीको छोड़कर और नाराज होकर अलग नहीं हो सकते और बिना हिसाब दिये मन-माना रुपये खर्च करनेका भारी भार उनके सरीखे अपने आदमीको छोड़कर दूसरा और कौन अपने सिरपर लेनेके लिए सामने आता! इसलिए अब चाहे स्वयं उनकी कितनी ही अधिक हानि क्यों न हो, यहाँ तक कि नीमतल्लेकी आढ़तका काम भी उनके हाथसे क्यों न निकल जाय, उनके लिए पीछे हटनेका कोई उपाय नहीं। लोग सुनेंगे तो उन्हींपर न थूकेंगे। गोकुलके चले जानेपर इसी तरहकी बहुत-सी बातें कह-कहकर बहुत रात तक वह अपनी विपद्ग्रस्त कन्याको सान्त्वना देते रहे।

जरा-सा कारण मिलते ही गोकुलकी आँखें लाल हो जाती थीं। सिरपर जब वह सारी रात जागनेके बाद सबेरे अपनी विमाताके कमरेमें आकर खड़ा हुआ, तब उसकी वह नितान्त रूक्ष मूर्ति देखकर भवानी डर गई। उसने कमरेमें पैर रखते ही कहा, "आज, अब मेरी समझमें आया कि सौतेली माँ कैसी होती है!"

एक तो गोकुल यों ही आजकल बार बार इसी तरहकी बातें कहा करता था, और फिर इधर तरह-तरहके बखेड़ोंके कारण भवानीका स्वाभाविक माधुर्य भी नष्ट होता चला जा रहा था; तो भी उस समय घरमें बाहरसे आये हुए बहुतसे आत्मीय और कुटुम्बी उपस्थित थे, इस लिए भवानीने किसी प्रकार अपने आपको सँभालकर संक्षेपमें ही पूछा, "क्यों, क्या हुआ है?"

गोकुल भड़क उठा। बोला, "होगा और क्या! तुम लोग कर ही क्या सकते हो? विनोद मुझपर नालिश करके मेरा कुछ बिगाड़ न सकेगा, यह मैं अभीसे कहे देता हूँ। निमाई राय—बद्दीपाड़ेके निमाई राय—कोई मामूली आदमी नहीं हैं, यह अच्छी तरह समझ रखना!"

भवानीने क्रोध भूलकर अत्यन्त आश्चर्यके साथ पूछा, "यह तुमसे किसने कहा कि विनोद नालिश करेगा?"

"सभी लोग कहते हैं। कौन नहीं जानता कि विनोद मुझपर नालिश करेगा?"

"कहाँ, मैं तो नहीं जानती।"

"अच्छा, जानती हो या नहीं, यह हम लोग देखे लेते हैं।"

यह कहकर गोकुल गुस्सेमें भरा हुआ वहाँसे जाना ही चाहता था कि फिर लौटकर खड़ा हो गया और सहसा उसके मुखसे ससुरकी कही हुई बात ही निकल पड़ी, "अब तुम्हारे जैसे दुश्मनोंको मैं अपने घरमें नहीं रख सकता।"

परन्तु यह कहनेके साथ ही साथ उसकी रुद्र मूर्ति मारे भयके विवर्ण और क्षुद्र हो गई और जिस तरह व्याधाके खींचे हुए धनुष्यके सामनेसे भयभीत मृग दिशा-विदिशाका खयाल छोड़कर भाग खड़ा होता है, उसी प्रकार गोकुल भी अपनी माँके सामनेसे भागा। वह समझता था कि मैं कैसी कड़ी बात कह बैठा हूँ; इस लिए उस रोज सारा दिन और सारी रात कहीं किसीको उसकी आवाज भी नहीं सुनाई पड़ी। कुटुम्बी जनोंके भोजनके समय भी वह उपस्थित नहीं हुआ। भवानीको पूछनेसे मालूम हुआ कि बड़े बाबू कहीं बहुत जरूरी तगादा करने गये हुए हैं और किसीसे यह नहीं कह गये कि कब लौटकर

आवेंगे। निमाई रायने ही मालिक बनकर सब लोगोंका आदर-सत्कार किया, उसमें जरा भी कमी नहीं की। बाहरसे जो लोग निमन्त्रित होकर आये थे, उनके साथ बैठकर विनोद चुपचाप भोजन करके उठ गया।

आँधी आनेसे पहले जिस प्रकार निरानन्द प्रकृति स्तब्ध हो जाती है, बहुतसे लोगोंके मौजूद रहते हुए भी सारे मकानने उसी प्रकार अशुभ रूप धारण कर रक्खा था। कोई कारण न जानते हुए भी दासी-दास मानों एक तरहसे बहुत ही कुण्ठित और त्रस्त होकर इधर उधर घूम रहे थे। इस प्रकार दो दिन और बीत गये। जो लोग श्राद्धके लिए आये थे, वे एक एक करके बिदा होने लगे। गोकुलकी बुआ अपने लड़के-बच्चोंको लेकर बर्दवान चली गई। विनोद अपनी बाहरवाली बैठकमें ही बैठकर सबेरेसे सन्ध्या तकका सारा समय बिता देता था, किसीके साथ कुछ बात ही नहीं करता था। अन्दर भवानी बिलकुल ही निर्वाक् हो गई थी। गोकुल भागा भागा फिरता था, अन्दर बाहर कहीं उसका पता नहीं चलता था। तीन-चार दिन इसी प्रकार और बीत गये। ऐसा मालूम होता था कि इस मकानमें मनोरमा और उसके बाल-बच्चोंके सिवा और कोई रहता ही नहीं है।

निमाई राय अपने कलकत्तेवाले सम्पर्कका अन्त करनेके लिए गये हुए थे। उस दिन सबेरे, शायद नीमतल्लेकी आढ़तको अथाह समुद्रमें बहाकर अपनी लड़की तथा दामादको किनारे लगानेके लिए आ पहुँचे। आज उनके साथ उनका छोटा लड़का भी था। यद्यपि उस समय तक भी उसके आनेका कारण साफ नहीं मालूम हुआ तथापि इतना पता चल गया कि वह केवल अपनी बहन और बहनोईको देखनेके लिए ही व्याकुल होकर नहीं आया है। इधर कई दिनसे अपने सुविज्ञ ससुरके सबल उत्साहके अभावमें गोकुल जिस प्रकार म्रियमाण हो रहा था, उस रूपमें आज वह भी नहीं दिखाई पड़ता था और मनोरमाकी तो कुछ पूछिए ही नहीं, वह तो सबेरेसे ही मानो सारे घरमें हल चलाती हुई घूम रही थी। भोजन आदिके उपरान्त मनोरमाके कमरेमें ही सब लोग जा बैठे और थोड़ी ही देरके वादानुवादमें सब कुछ निश्चय हो गया। रसिक चक्रवर्ती तलब किये गये। उन्हें बिदा करनेसे पहले निमाई उनके सब कागज-पत्र खूब अच्छी तरह देखने और समझने लगे। वह बेचारा बहुत दुखी था और उसका चित्त जरा भी ठिकाने नहीं था, इस लिए वह न तो सब बातोंका ठीक ठीक जवाब ही दे सकता था और न ठीक

तरहसे हिसाब ही समझा सकता था। उसे रह-रहकर डाँट-फटकार सुननी पड़ती थी और बाप-बेटा मिलकर उससे जो कड़ी जिरह करते थे, उसकी चोटोंके कारण तो वह अपने आपको एक पक्का चोर ही सिद्ध कर रहा था।

अन्तमें निमाईने कहा, "मैं था नहीं, इसी लिए तुम न जाने कितने रुपये खा गये। किन्तु अब नहीं, खा सकोगे, जाओ, तुम्हें जवाब मिलता है।"

चक्रवर्तीकी दोनों आँखोंसे आँसू निकल आये। उसने कहा, "साहब, मैं कोई आजका नौकर नहीं हूँ। मालिक मुझे अच्छी तरह जानते हैं।"

गोकुल चुपचाप सिर झुकाकर रह गया। राय महाशयके छोटे लड़केने चिल्लाकर कहा, "तुमने क्या बाबूजीको भी अपने मालिककी तरह बैल समझ लिया है? बस, बहुत माया फैलानेकी जरूरत नहीं, चले जाओ।"

इस छोकरेके इस नितान्त अशिष्टतापूर्ण तिरस्कारसे व्यथित होकर चक्रवर्तीने अपने आँसू पोंछ डाले और कुछ देर तक चुप रहनेके बाद गोकुलसे कहा, "बड़े बाबू, मेरी चार महीनेकी तनख्वाह—"

गोकुल जल्दीसे बोल बैठा, "हाँ, हाँ, चक्रवर्ती महाशय, वह तो बाकी है ही। इसके सिवा और भी यदि—"

परन्तु गोकुलकी बात पूरी नहीं होने पाई कि निमाईने दाहिना हाथ बढ़ाकर उसे रोक दिया और जलद-गम्भीर स्वरमें कहा, "बस बेटा, तुम चुपचाप बैठे रहो।" और फिर चक्रवर्तीसे कहा "मालिक वह नहीं हैं, मालिक मैं हूँ। मैं जो कुछ करूँगा, वही होगा। तुम्हें तनख्वाह नहीं मिलेगी। तुम इसीको अपने बापका सौभाग्य समझो कि मैं तुम्हें जेल नहीं भेज रहा हूँ।"

चक्रवर्ती इसपर कुछ भी न कहकर चला गया।

इतनी देरतक कुछ कहनेका अवसर न पाकर मनोरमाका पेट फूल रहा था। चक्रवर्तीके जाते ही उसने अपना मुख गम्भीर बनाकर अपने पतिको लक्ष्य करके कहा, "अब अगर फिर तुमने बाबूजीकी बातमें दखल दिया, तो या तो मैं गलेमें फाँसी लगाकर मर जाऊँगी और या सबको साथ लेकर अपने बाबूजीके घर चली जाऊँगी।"

गोकुलने कुछ भी उत्तर न दिया। वह चुपचाप सिर झुकाये बैठा रह गया। अपने बाप और भाईके सामने पतिकी इस एकान्त अवाध्यताके आनन्द और गर्वसे मनोरमा गल गई और अस्फुट स्वरसे बोली, "अच्छा बाबूजी, तुम हमारे नन्दलालको भी दूकानके किसी काममें क्यों नहीं लगा देते?"

निमाईने कहा, " अरे बेटी, इसी लिए तो मैं लड़केको साथ लेता आया हूँ। मैं तो यहाँ ज्यादा दिन तक रह नहीं सकूँगा। नहीं तो मेरा वह चालानका काम बन्द हो जायगा। इस समय क्या मैं यहाँ आ सकता था? अपने बाबू साहबके साथ बहुत लड़ाई-झगड़ा करके आ सका हूँ। जब मैं चलने लगा था, तब उन्होंने आँखोंमें आँसू भरकर कहा था—' राय महाशय, आप जब तक लौटकर न आवेंगे, तब तक मेरा खाना-पीना और सोना-बैठना सब बन्द रहेगा। दिन रात आपका आसरा देखते ही मेरे दिन बीतेंगे।' इसी लिए तो बेटी, मैं सोच रहा हूँ कि अपने नन्दलालको ही सब कुछ समझा-बुझाकर और सिखा-पढ़ाकर यहाँ रख जाऊँ। चाहे जो हो, आखिर है तो यह मेरा लड़का!"

" बाबूजी, तुम यही कर जाओ। इसी लिए तो मैं—"

हठात् मनोरमाने अपने सिर परका आँचल जल्दीसे आगे खींच लिया और वह चुप हो गई। रसिक चक्रवती कमरेके सामने आ खड़े हुए थे। बोले, " बाबूजी, माँ आई हैं।"

अचानक माँका आगमन सुनकर गोकुल व्यस्त हो उठा। इधर सात आठ दिनोंसे गोकुलका उनसे सामना ही नहीं हुआ था। किवाड़की आड़में खड़े होकर भवानीने सहज स्वरमें पुकारा, " गोकुल!"

गोकुल तुरन्त अदबसे उठ खड़ा हुआ और बोला, " क्या है माँ?"

भवानीने आड़मेंसे ही उसी प्रकार स्पष्ट स्वरमें कहा, " यह सब पागलपन करनेके लिए तुमसे किसने कहा? चक्रवर्ती महाशय बहुत दिनोंके आदमी हैं। वे जब तक जीते रहें, तब तकके लिए मैं उन्हें कामपर रखती हूँ। सन्दूककी चाबी और बही-खाता लेकर उन्हें दूकान जाने दो।"

यदि उस समय कमरेपर बिजली आ गिरती तो भी शायद लोगोंको इतना आश्चर्य न होता। भवानीने कुछ देर तक चुप रहनेके बाद फिर कहा, " एक बात और है। समधीजी दया करके यदि यहाँ आये हैं, तो वे रिस्तेदारोंकी तरह खातिरसे दो दिन रहें, सब कुछ देखें-सुनें, पर उन्हें इस बातकी फिक्र करनेकी जरूरत नहीं कि हमारी दूकानमें चोरी होती है या नहीं होती। चक्रवर्तीजी, आप देर न करें, दूकान जायँ। मैं नहीं चाहती कि कोई बाहरका आदमी आकर मेरी दूकानपर बैठे और बही-खाते इधर-उधर करे। गोकुल इन्हें चाबी दे दो, ये जायँ!"

इतना कहकर और बिना किसीसे उत्तरकी क्षण-भर भी प्रतीक्षा किये जैसे भवानी आई थी, वैसे ही चली गई और कमरेके अन्दरसे उसके पैरोंकी आवाज सुनाई पड़ती रही। स्तम्भित भावके समाप्त हो जानेपर निमाई रायने सूखी हँसी हँसकर कहा, "इसीको कहते हैं—पराये धनपर पोतदारी। इनका हुक्म चलानेका ढंग देखा बेटा?"

लेकिन बेटाने कोई उत्तर न दिया। हाँ, उत्तर दिया स्वयं उनके पुत्र-रत्नने। वह बोला, "बाबूजी, यह सब तो समझी-बूझी ही बात है। तुम अगर यहाँ रहोगे तो फिर किसीको चोरी करनेका मौका कैसे मिलेगा? वाह, बलिहारी इस हुक्मकी!"

निमाईने भी अपने पुत्रकी बातका समर्थन करते हुए कहा, "हाँ सो तो है ही।"

इतनेमें निमाईकी दृष्टि रसिक चक्रवतीपर पड़ी। उन्हें देखते ही निमाईने जल-भुनकर और बहुत बुरी तरह मुँह बनाकर कहा, "क्यों भाई, अब खड़े क्यों हो? विदा होओ न। नमकहराम कहींके! मैंने जेल नहीं भेज दिया, इसीसे? हट जाओ सामनेसे। मैंने सोचा था कि ब्राह्मण है, चलो मरने दो। जो किया सो किया; फिर भी दस पाँच रुपये दे दूँगा। लेकिन, फिर वही शरारत! तुम्हें तो बड़े घर भेजना ही मुनासिब था!"

परन्तु अपने स्वामीका भाव देखकर मनोरमाको कुछ कहनेका साहस न हुआ। गोकुल जिस तरह सिर नीचा किये खड़ा था ठीक उसी तरह पत्थरकी मूरतकी तरह खड़ा रहा। चक्रवर्तीने भी किसीकी बातका कोई जवाब नहीं देकर अपने स्वामीसे नम्रतापूर्वक कहा, "अच्छा, तो मैं बही-खाता लेकर चलता हूँ। सन्दूककी चाबी दे दीजिए।"

गोकुलने भी बिना कुछ कहे-सुने कमरसे चाबियोंका गुच्छा निकालकर रसिक चक्रवर्तीके सामने फेंक दिया। चक्रवर्तीने गुच्छा उठाकर कमरमें खोंस लिया और बही-खाता बगलमें दबाकर हँसी रोकते हुए वहाँसे चल दिया। उनके इस प्रकार जानेका अर्थ बहुत ही स्पष्ट था। इसी लिए बिना किसीसे पूछे-ताछे मानों किसीने निमाई रायके काले मुँहपर सारे संसारकी कालिमा लाकर पोत दी।

इसके उपरान्त इस मन्त्रणा-गृहमें जो दृश्य उपस्थित हुआ, वह सचमुच

ही अनिर्वचनीय था। अपने पिता और भाईका ऐसा अकल्पित और विकट अपमान देखकर मनोरमाके होश-हवास गुम हो गये। उसने अपने स्वामीका बहुत अधिक तिरस्कार और अपमान किया, सब प्रकारसे अपना बिकट और भीषण रूप दिखलाया, अनुनय विनय की, और यहाँतक कि अन्तमें मर्मान्तिक विलाप भी किया। लेकिन इतने पर भी जब वह उसके मुखसे अपने पिताके पक्षमें एक भी शब्द न निकलवा सकी, तब मुँह-सिर लपेटकर मुरदोंकी तरह पड़ गई। मारे लज्जा और क्षोभके गोकुलका गला भर आया। उसने रुँधे हुए स्वरसे कहा, "मैं कैसे जानता कि माँ मेरे साथ दुश्मनी करके ऐसा हुक्म दे बैठेंगी?"

निमाईने एक लम्बी साँस लेकर कहा, "चलो, अच्छा हुआ, जान बची। बहुत बड़ी झंझटसे पीछा छूटा। उधर मेरे शिवजीके समान मालिक रो-धो रहे थे, उन्हें छोड़कर भला मैं कहीं रह सकता हूँ! और फिर मुझे ऐसी कौन-सी गरज पड़ी है कि अपने घरकी जमा खाकर किसीके जंगलकी रखवाली करूँ? लेकिन देखो बेटी मनोरमा, मैं तुमसे एक बात कहे देता हूँ। अगर तुम्हें किसी दिन अपने बाल-बच्चोंको लेकर गलियोंमें भीख माँगनी पड़े—और यह तो सामने दिखाई ही पड़ रहा है कि एक न एक दिन माँगनी ही पड़ेगी—तो फिर मुझे दोष न देना कि बाबूजीने एक बार हम लोगोंकी तरफ लौटकर भी नहीं देखा। यह समझ रखना कि मैं इस तरहका आदमी नहीं हूँ कि फिर लौटूँ, चाहे लड़की हो और चाहे दामाद।"

इतना कहकर निमाईने अपने दामादकी ओर एक तीव्र कटाक्ष किया। लेकिन उनके उस कटाक्षकी ओर स्वयं उनके लड़केके सिवा और किसीका ध्यान ही नहीं गया। उस समय निमाईने अपना स्वर और भी तीव्र करके कहा, "अभी तक तो खैर मैं बिगड़ा नहीं। पर एक बार बिगड़ बैठनेपर निमाई राय फिर किसीके नहीं हो सकते। फिर ब्रह्मा और विष्णु भी आकर मुझे नहीं मना सकते। अब तुम दोनों आदमी एक बार एकान्तमें खूब अच्छी तरह सोच समझ लो। बेटा नन्दलाल, देखो ढाई बज गये हैं, साढ़े तीन बजेवाली गाड़ीसे मैं यहाँसे चला जाऊँगा। अपना सब सामान ठीक कर लो। यह तो तुम जानते ही हो कि चाहे सारी दुनिया इधरसे उधर हो जाय, पर तुम्हारे बापकी बात नहीं टल सकती।"

इतना कहकर निमाई रायने दर्पके साथ अपने लड़केका हाथ पकड़ा और

वे अपनी लड़की तथा दामादको केवल एक घण्टे सोचने-विचारनेका समय देकर वहाँसे चले गये।

लेकिन मतलब कुछ भी न निकला। एक घण्टेका समय होता ही कितना है! निमाई लगातार तीन दिन तक वहाँ रहकर निरन्तर मान अभिमान और क्रोध आदि करके तथा अनेक प्रकारकी कटूक्तियाँ सुनाकर भी गोकुलके मुँहसे दूसरी बात न निकलवा सके। अपने ससुरका जो इतना अधिक अपमान हुआ था, उसके कारण स्वयं गोकुलकी भी लज्जा और क्षोभकी कोई सीमा न रह गई थी। पर फिर भी उसकी समझमें यह बात किसी तरह न आई कि अपनी माँकी स्पष्ट आज्ञाके विरुद्ध मैं कैसे क्या करूँ। इसी लिए वह सब प्रकारका तिरस्कार और अपमान चुपचाप सहने लगा।

११

जब निमाईने देखा कि मेरी सारी आशाओं और आकांक्षाओंपर पानी फिर गया और मेरी सारी जल्पना-कल्पना व्यर्थ हो गई, तब उन्होंने बहुत ही भीषण रूप धारण किया और उन्हें बाध्य होकर स्पष्ट रूपसे यह धमकी देनी पड़ी कि तुम लोगोंने मेरी नौकरी छुड़ाकर मुझे यहाँ बुलवाया है, इसलिए उसका तुम्हें हरजाना देना पड़ेगा। इस बीचमें उन्होंने बनर्जी महाशयको भी अपनी ओर मिला लिया था। वे आकर गोकुलसे कहने लगे कि तुम बेवकूफ हो, अन्धे हो, अपना भला-बुरा नहीं समझते, आदि आदि। साथ ही उन्होंने बातों बातोंमें यह भी इशारेसे समझा दिया कि यदि तुम इस प्रकार निमाई रायका अपमान करोगे तो वे जाकर विनोदके साथ मिल जायँगे और तुम्हें और भी तंग करेंगे!

इसपर गोकुलने कातर स्वरसे कहा, "मास्टर साहब, आप ही बतलाइए कि मैं क्या करूँ? माँ उन्हें किसी तरह घरमें रहने ही नहीं देना चाहतीं। उन्होंने चक्रवर्ती महाशयको हुक्म दे दिया है कि राय महाशय दूकानमें भी न घुसने पावें।"

मास्टर साहबने पूछा, "लेकिन गोकुल, यह तो बतलाओ कि यह सारा कारोबार और सारी जायदाद तुम्हारी है या तुम्हारी माँकी? और फिर यह भी जानते हो कि आजकल तुम्हारी माँ तुम्हारे शत्रुके साथ मिली हुई है?"

जब गोकुलने सिर हिलाकर मास्टर साहबकी बातका समर्थन किया, तब वे प्रसन्न होकर बोले, "तो फिर भइया, इस तरहका पागलपन मत करो। तुम सब धन-दौलत और काम-धंधा राय महाशयके सपुर्द कर दो और चुपचाप बैठे हुए सिर्फ तमाशा देखते रहो। मेरी बात छोड़ दो, नहीं तो इतना होशियार आदमी तुम इस इलाके-भरमें भी ढूँढ़े न पाओगे।"

गोकुलने कहा, "मास्टर साहब, यह तो मैं अच्छी तरह जानता हूँ। परन्तु बाबूजी मरते समय कह गये हैं कि बिना अपनी माँकी रायके तुम कोई काम मत करना।"

बनर्जी महाशयने मुँह चिढ़ाकर कहा, "बाबूजी कह गये हैं कि बिना माँसे पूछे कोई काम मत करना! क्या तुम्हारे बाबूजी जानते थे कि तुम्हारी माँ ही तुम्हारी शत्रु हो जायगी? तब क्या तुम माँकी रायसे चलकर अपनी सारी सम्पत्ति गँवाना चाहते हो? बोलो।"

लेकिन गोकुलके पास इन सब प्रश्नोंका कोई उत्तर न था, इस लिए वह चुपचाप सिर झुकाये बैठा रहा। राय महाशय आड़में खड़े हुए सब बातें सुन रहे थे। अब वह सामने आ पहुँचे और जब इन दोनों महारथियोंकी जिरह शुरू हुई, तब उसके सामने बेचारा गोकुल मानों अथाह समुद्रमें बह गया। उसे सिर झुकाये और निरुत्तर देखकर दोनों ही प्रसन्न हुए और उसकी इस सुबुद्धिके लिए उसकी तारीफोंके पुल बाँधने लगे!

जब बनर्जी महाशय अपने घर जानेके लिए तैयार हुए, तब सफल-मनोरथ राय महाशयने उन्हें साष्टांग प्रणाम किया और उनके चरणोंकी धूल लेकर अपने मस्तकपर लगाई। बनर्जी महाशयने भी स्नेहपूर्वक गोकुलकी पीठपर हाथ फेरते हुए कहा, "गोकुल, मैं तुम्हें आशीर्वाद देता हूँ। आज तुमने जिस प्रकार अपना सर्वस्व हम लोगोंके हाथ सौंप दिया है, उसी प्रकार हम लोग भी तुम्हारा बाल बाँका न होने देंगे। क्यों राय महाशय, ठीक है या नहीं?"

राय महाशयने भी आनन्द और विनयसे गद्गद होकर कहा, "आपके आशीर्वादसे यहाँके सभी लोग देख लेंगे कि मैं क्या करता हूँ। लेकिन दुश्मनोंको मैं इस मकानमें अब एक दिन भी न रहने दूँगा; यह मैं आपको बतलाये देता हूँ फिर चाहे कोई मेरे दामादकी माँ हो, चाहे भाई हो और उस साले चक्रवर्तीको तो जब तक मैं घरसे निकाल न दूँगा, तब तक पानी

भी न पीऊँगा।—अरे कोई है रे! जा तो उस बाम्हनको जल्दी ही दूकानसे बुला ला।"

यह कहकर राय महाशय इतनेमें ही सोलह आने क्या बल्कि सत्रह आने अपनी जीत समझकर गरज उठे।

पर गोकुलने संकुचित और अत्यंत लजित होकर मृदु स्वरसे कहा, "नहीं नहीं, अभी उन्हें बुलानेकी आवश्यकता नहीं है।"

बनर्जी महाशयने अपने दोनों हाथ दोनों तरफ फैलाकर कहा, "नहीं नहीं गोकुल, इस समय आँखोंके लिहाजका काम नहीं है। उसे हम लोग नहीं रख सकते—किसी हालतमें नहीं। उसका दिमाग बहुत बढ़ गया है। मैं बतलाये देता हूँ कि हम लोग उसे नहीं चाहते।"

इसके उत्तरमें गोकुलने पहलेकी ही तरह विनीत स्वरसे कहा, "लेकिन माँ तो उन्हें चाहती हैं। जिसे उन्होंने रख लिया है, उसे छुड़ानेकी किसीकी मजाल नहीं है। बाबूजी मुझे इतना अधिकार ही नहीं दे गये हैं।"

यह कहकर गोकुलने फिर सिर झुका लिया। उसका यह आशातीत उत्तर और इतना दृढ़ कण्ठस्वर सुनकर दोनों ही मारे आश्चर्यके हतबुद्धि हो गये। कुछ देरतक स्थिर रहनेके बाद बनर्जी महाशयने पूछा, "तो फिर क्या वह रहेगा ही?"

गोकुलने कहा, "जी हाँ। उनके ऊपर मेरा कोई जोर नहीं है।"

बनर्जी महाशयने डरते हुए कहा, "तो फिर राय महाशयका क्या होगा?"

गोकुलने कहा, "वे अपने घर जायँ। माँ उन्हें यहाँ किसी तरह रहने देना नहीं चाहतीं। और नौकरी छूट जानेके कारण उनका जो नुकसान हुआ है, वह मैं माँसे पूछकर उनके पास भेज दूँगा।"

इतना कहकर बिना किसीके उत्तरकी प्रतीक्षा किये गोकुल वहाँसे चला गया।

सभी लोगोंने समझा था कि इतना अधिक अपमान होनेपर राय महाशय यहाँ क्षण-भर भी न ठहरेंगे। लेकिन आठ-दस दिन बीत गये, फिर भी ऐसा समझनेका कोई विशेष लक्षण देखनेमें न आया। जान पड़ता है कि अपनी कन्या और दामादके असाधारण प्रेमके कारण ही उन्होंने ऐसी छोटी मोटी बातोंपर ध्यान नहीं दिया; और इसी लिए वे मौकेपर मौजूद रहकर दिन-रात उन लोगोंके हित-साधनका प्रयत्न करने लगे। परन्तु उनकी इस शुभाकांक्षाके

प्रतापसे जिस प्रकार एक ओर तो गोकुल पीडित और क्षुब्ध होने लगा, उसी प्रकार दूसरी ओर भवानी भी घड़ी घड़ी अस्थिर होने लगी। पुत्र-वधू और उसके पिताके छोड़े हुए शब्द-भेदी वाण उठते-बैठते खाते-पीते हर दम उसके दोनों कानोंमेंसे घुसकर उसका कलेजा छेदने लगे।

उस दिन भवानीसे और न सहा गया, इसलिए उसने बहू रानीको बुलाकर कहा, " क्यों बहू, क्या गोकुल यह नहीं चाहता कि अब मैं इस मकानमें रहूँ ? "

परन्तु पुत्र-वधूने जान बूझकर कोई उत्तर न दिया। वह केवल सिर झुकाकर नाखूनोंसे नाखूनका कोना कुतरने लगी। कुछ देरतक चुप रहनेके बाद भवानीने कहा, " और यदि गोकुलकी यही इच्छा है तो वह स्वयं ही आकर सीधी तरहसे क्यों नहीं कह देता ? तुम्हारे भाई और बापसे इस तरह दिन-रात अपमान क्यों कराता है ? "

परन्तु भवानी यह सोच भी न सकी कि गोकुलको इन सब बातोंका जरा भी पता नहीं है, बल्कि ये क्षुद्राशय लोग ही उससे बिलकुल छिपाकर, उसे इसका आभास भी न मिलने पावे इस तरह, अपने जहरीले दाँत निकालकर काटते फिरते हैं। लेकिन बहू तो अब पहले जैसी बहू रह नहीं गई थी, इसलिए उसने उत्तर दिया, " किसने किसका अपमान किया है, यह तो सारा जमाना जानता है। अगर मैं अपनी चीज़ ग़ैरोंके हाथसे बचानेके लिए अपने बाप और भाईको उठाकर दे देती हूँ, तो इससे तुम्हारी छातीमें क्यों शूल होता है ? एकके फायदेके लिए दूसरेका सर्वनाश करना क्या कोई अच्छी बात है ? "

भवानीने अपने आपको रोकते हुए बहुत धीरतापूर्वक कहा, " क्यों बेटी, आखिर मैं किसका सर्वनाश कर रही हूँ ? "

मनोरमा बोली, " जिनका सर्वनाश करती हो, गालियाँ वही देते हैं। इसमें वही क्या करें और मैं ही क्या करूँ ? जो ईंट मारेगा, उसे पत्थर खाना पड़ेगा, इसके लिए गुस्सा करनेसे तो काम चलेगा नहीं। "

यह कहकर मनोरमा चली गई।

भवानी स्तंभित होकर, कुछ देरतक वहीं खड़ी रहकर धीरे-धीरे अपने कमरेमें जाकर पड़ गई। स्वामीके जीवन-कालके गोकुल और गोकुलकी स्त्री मनोरमाको याद करके आज कई दिन बाद फिर उसकी आँखोंसे आँसुओंकी धारा बह निकली। वह यह अनुशोचना किसी भी प्रकार अपने मनसे दूर

नहीं कर सकी मैं कि मूर्ख हूँ, मैंने केवल अपने ही पैरोंमें नहीं, अपने लड़केके पैरोंमें भी कुल्हाड़ी मारी है। यदि मैं स्वयं ही इस प्रकार अनुनय-विनय करके सारी सम्पत्ति गोकुलके नाम न लिखा देती, तो आज यह दुर्दशा क्यों होती? विनोद चाहे कितना ही नालायक क्यों न हो, पर वह मुझे इतना अपमानित और उत्पीडित कदापि न कर सकता।

पर विनोद चुपचाप अपने लिए जीविका-निर्वाहका जो प्रयत्न कर रहा था, उसका किसीको पता ही न था। उसने अपने लिए अदालतमें एक नौकरी ठीक कर ली थी और बस्तीके एक कोनेमें अपने रहनेके लिए किरायेका एक छोटा-सा मकान भी ले लिया था। उसी सन्ध्याको उसने घर आकर संवाद दिया कि कल सवेरे ही मैं अपने नये मकानमें चला जाऊँगा।

भवानी आग्रहपूर्वक उठ बैठी और बोली, "बेटा विनोद, मुझे भी अपने साथ ले चल। अब मुझसे यहाँका अपमान नहीं सहा जाता। तू मुझे जिस तरह रखेगा, उसी तरह रहूँगी। लेकिन किसी तरह इस घरसे मेरा छुटकारा करा दे।" यह कहकर वह रोने लगी।

कुछ देर बाद एक एक करके सारी बात सुनकर जब विनोद बाहर जाने लगा तब रास्तेमें उसका गोकुलसे सामना हो गया। वह दूकानका काम-काज खत्म करके घर आ रहा था। और दिन होता तो विनोद दूरसे ही कतराकर निकल जाता, पर आज वह खड़ा हो रहा और जब गोकुल पास आया, तब बोला, "कल सवेरे मैं माँको लेकर अपने नये मकानमें चला जाऊँगा।"

गोकुल अवाक् होकर बोला, "नये मकानमें! मुझसे बिना पूछे-ताछे ही मकान ठीक कर लिया?"

"हाँ।"

"तो यों कहो कि पढ़ना छोड़ दिया!"

"हाँ।"

इस संवादने गोकुलके हृदयपर जो मर्मान्तिक आघात किया, वह उस सन्ध्याके अन्धकारमें विनोद नहीं देख सका। गोकुल लड़कपनसे ही अपने छोटे भाईके एम० ए० पास करनेका सुख-स्वप्न देखता आ रहा है। वह जब अपने परिचितोंमेंसे किसीके कोई इम्तिहान पास करनेकी खबर सुनता था, तब बिना बुलाये जा पहुँचता था और उस व्यक्तिके पास होनेपर आनन्द प्रकट करके

अपने भाईकी एम० ए० परीक्षाकी समाप्तिके लिए चिन्ता और उत्सुकता प्रकट करता था। जो लोग जानते थे, वे मन ही मन हँसते थे। पर जो नहीं जानते थे, वे जब गोकुलसे उसके उस उद्वेगका कारण पूछते थे, तब वह अपने छोटे भाई विनोदके आनर ग्रेज्युएट होनेका जिक्र छेड़ बैठता था, और बातों बातोंमें अन्य-मनस्कतासे विनोदका मेडल भी बाहर निकाल बैठता था। पर उसे यह याद नहीं आता था कि किस प्रकार और क्यों वह मेडल मखमलके बक्ससमेत उसकी जेबमें आ पड़ा है! उसकी एकान्त इच्छा थी कि सुनारको बुलवाकर यह दुर्लभ वस्तु अपनी घड़ीके चेनमें जड़वा दूँ और अब तक उसकी यह इच्छा पूरी भी हो गई होती, यदि विनोदने उसे यह भय न दिखाया होता कि यदि तुम इस तरहका पागलपन करोगे, तो मैं इसे छीनकर तालाबमें फेंक दूँगा। गोकुल बहुत उत्सुकतापूर्वक एम० ए० के मेडलकी प्रतीक्षा करता था और सोचता था कि देखनेमें न जाने वह कैसा होगा; और जब वह घर आवेगा तब कैसे और कहाँ रखा जायगा।

उसी एम० ए० की पढ़ाई छोड़ देनेकी बात सुनकर गोकुलके कलेजेमें मानों गरम बरछी छिद गई। लेकिन आज उसने बहुत अधिक कठिनतासे अपने आपको रोकते हुए कहा, "खैर, पर यह तो बतलाओ कि नये मकानमें माँको ले जाकर खिलाओगे क्या?"

"जो होगा, देखा जायगा।"

यह कहकर विनोद चला गया। वह स्वयं भी अपनी माताके समान अल्पभाषी था। उसने अपने बड़े भाईपर यह प्रकट नहीं किया कि मैं घरसे सारी बातें सुनकर अभी चला आ रहा हूँ।

ज्यों ही गोकुलने घरके अन्दर पैर रक्खा, त्यों ही मुनुआकी माँने आकर समाचार दिया कि माँ आपको बुलाती हैं। गोकुल सीधा माँके कमरेमें जा पहुँचा। उसने देखा कि इस सन्ध्याके समय भी माँ अपने बिस्तरपर निर्जीवके समान पड़ी हैं। भवानीने उठकर कहा, "गोकुल, कल सबेरे ही मैं इस मकानसे जाती हूँ।"

गोकुल अभी अभी विनोदसे यह बात सुनकर मन ही मन जला जा रहा था, तत्काल ही बोला, "हम लोगोंने तुम्हारे पैरोंमें रस्सी बाँधकर कुछ रोक तो रखा ही नहीं है! तुम्हारा जहाँ जी चाहे, जाओ। हमारा इसमें क्या है! किसी तरह टल जाओ, तो जान बचे।"

यह कहकर गोकुल अपना मुँह भारी बनाकर वहाँसे चला गया।

दूसरे दिन भवानी जानेकी व्यवस्था कर रही थी। मनुआकी माँ पास बैठकर सहायता कर रही थी। गोकुलने आँगनमें खड़े होकर जोरसे चिल्लाकर कहा, "मनुआँकी माँ, जाकर कह दे कि आज उनका जाना न हो सकेगा।"

मुनुआवी माँने कुछ चकित होकर पूछा, "क्यों बड़े बाबू, आज क्या है?"

गोकुलने कहा, "आज दशमी जो है। बाल-बच्चोंकी गृहस्थी ठहरी, आज जानेसे अकल्याण न होगा? उनसे कह दो कि आज मैं उन्हें किसी तरह इस घरसे न जाने दूँगा। इच्छा हो तो कल चली जायँगी। मैंने गाड़ी लौटा दी है।"

यह कहकर गोकुल वहाँसे जल्दी जल्दी जा रहा था कि मनोरमाने हाथके इशारेसे उसे आड़में बुलाकर कुछ बिगड़ते हुए कहा, "जब जा ही रही थीं, तब रोकनेकी क्या जरूरत थी?"

इधर कई दिनोंसे स्त्रीके साथ गोकुलका फिर मेल-जोल बढ़ने लगा था। पर आज वह अचानक मुँह चिढ़ाकर और बिगड़कर चिल्लाता हुआ बोला, "मैं रोकता हूँ, मेरी खुशी। वे घरकी मालकिन ठहरीं, आज वे घरसे चली गईं और कल अगर उनके चले जानेके बाद बाल-बच्चे पटापट मरने लगे, तो?"

यह कहकर गोकुल उसी तेजीसे बाहर चला गया। मनोरमा क्रोध और आश्चर्यसे अवाक् रह गई। उसके मुँहसे केवल इतना ही निकला, "जरा इनके लच्छन तो देखो!"

१२

दशमीके बाद एकादशी और फिर द्वादशी भी बीत गई, पर गोकुलको अभी तक माँको घरसे बिदा करनेका तिथि-नक्षत्र न मिला। त्रयोदशीके दिन जब घरसे पुरोहितजीने स्वयं आकर अच्छी साइत बतलाई, तब गोकुल अकारण ही बिगड़कर बोला, "क्यों पुरोहितजी, आप जिसका खायँगे, उसीका सत्यानाश करेंगे? जाइए, आप जाकर दूसरा काम देखिए। मैं माँको कहीं न जाने दूँगा।"

उस दिन मनोरमाने जो घुड़की खाई थी, उसके बाद वह फिर नहीं बोली। पर आज उसने अपने पिताको भेज दिया। निमाई रायने आकर कहा, "बेटा, यह तो अच्छी बात नहीं हो रही है।"

गोकुल यों कभी अखबार नहीं पढ़ता; पर आज वह अखबार पढ़ने बैठ गया था। उसने पूछा, "कौन-सी बात?"

"जब समधिनजी खुद ही अपने लड़केके साथ अपनी इच्छासे जा रही हैं, तब हम लोगोंका उन्हें रोक रखना ठीक नहीं है।"

गोकुलने अखबार पढ़ते हुए कहा, "अगर मुहल्ले टोलेके लोग यह बात सुनेंगे, तो बड़ी बदनामी होगी।"

निमाईने बहुत चकित होकर कहा, "मैं तो नहीं समझता कि इसमें बदनामीकी कोई बात है।"

इतने दिनों तक गोकुल अपने ससुरके साथ आदरपूर्वक ही बातें करता था। पर आज वह अचानक आग-बबूला होकर बोला, "इसमें आपके समझनेकी कोई जरूरत नहीं है। साफ बात यह है कि मैं अपनी माँको किसीके यहाँ न जाने दूँगा। जो जिससे करते बने, वह कर ले। बस।"

गोकुलकी यह साफ बात विनोदके कानों तक पहुँचनेमें देर नहीं लगी। हर-रोज बाधा डालकर गाड़ी वापस कर देनेसे विनोद मन ही मन बिगड़ रहा था। आज उसने गोकुलसे कहा, "भइया, आज मैं माँको अपने साथ ले जाऊँगा। आप इसमें व्यर्थ बाधा न डालें।"

गोकुलने समाचार-पत्रको और भी अधिक ध्यानसे देखते हुए कहा, "आज तो उनका जाना न हो सकेगा।"

"क्यों न होगा? जरूर होगा। मैं अभी लिये जाता हूँ।"

विनोदका क्रुद्ध कण्ठ-स्वर सुनकर गोकुलने अपने हाथका समाचारपत्र एक ओर फेंक दिया और कहा, "लिए जाता हूँ, क्या इतना कहनेसे ही हो जायगा? बापूजी मरते समय माँको मेरे साथ रहनेके लिए कह गये हैं। तुम्हारे सिपुर्द नहीं कर गये हैं। मैं न जाने दूँगा।"

विनोदने कहा, "लेकिन भइया, यदि आप सचमुच माँका भार अपने ऊपर लेते, तो माँको इस प्रकार दिन-रात अपमान और तिरस्कार न सहना पड़ता। माँ, बाहर निकल आओ। गाड़ी खड़ी है।"

इतना कहकर विनोदने ज्यों ही मुड़कर पीछेकी तरफ देखा, त्यों ही भवानी बाहर आकर खड़ी हो गई। गोकुलको यह मालूम नहीं था कि माँ पहलेसे ही आकर आड़में खड़ी हैं। जब उसने देखा कि माँ सीधी जाकर गाड़ीपर सवार

हो गई, तब पहले तो वह कुछ देर तक जडवत् वहीं खड़ा रहा और अन्तमें गाड़ीके पास पहुँचकर बोला—देखो माँ, मैं कहे देता हूँ कि अगर तुम इस तरह यहाँसे जबरदस्ती चली जाओगी, तो फिर हमारा तुम्हारा कोई वास्ता न रह जायगा।"

भवानीने कोई उत्तर न दिया। विनोदने गाड़ी हाँकनेका हुक्म दे दिया। ज्यों ही गाड़ी चली, त्यों ही गोकुलने अकस्मात् रुँधे हुए गलेसे कहा, "माँ, क्या मैं तुम्हारा लड़का नहीं हूँ, जो तुम मुझे इस तरह छोड़कर चली जा रही हो? मुझे क्या तुमने पाला-पोसा नहीं है?"

गाड़ीकी घड़घड़ाहटके कारण गोकुलकी यह बात भवानीके कानों तक तो नहीं पहुँची, पर विनोदने सुन लीं। उसने गाड़ीमेंसे झाँककर देखा कि गोकुल अपने दुपट्टेके कोनेसे मुँह ढककर शीघ्रतासे चला गया और अन्दर जाकर विनोदकी बैठकमें पहुँचकर अन्दरसे किवाड़ बन्द करके लेट गया। आड़मेंसे निमाई राय गोकुलकी ये सब बातें देख रहे थे और मन ही मन कुछ उद्विग्न हो रहे थे। लेकिन थोड़ी देर बाद जब गोकुल उस कमरेका दरवाजा खोलकर बाहर निकला, और ठीक समयपर स्नान भोजन करके दूकान चला गया, तब उसकी आँखों, मुख या आचरणमें भयके कोई विशेष चिह्न न देखकर निमाई रायकी जानमें जान आई और अब निश्चिन्त होकर उन्होंने काममें मन लगाया। साँप जिस प्रकार धीरे धीरे अपना शिकार उदरस्थ करता है, ठीक उसी प्रकार निमाई भी बहुत अधिक प्रसन्न होकर अपने जामाताको जीर्ण करनेका आयोजन करने लगे।

लक्षण भी बहुत अनुकूल जान पड़े। अपने पिताकी मृत्युके बादसे ही गोकुल बहुत अधिक उग्र और असहिष्णु हो गया था। वह मामूली-सी बातपर भी बिगड़ खड़ा होता था। पर जिस दिन भवानी घरसे चली गई, उस दिनसे वह औरका और हो गया। अब न तो वह कभी किसीकी बातपर नाराज होता है और न किसीका प्रतिवाद ही करता है। निमाई राय इससे चाहे जितने पुलकित हुए हों, पर उनकी कन्या मनोरमा तनिक भी प्रसन्न न हो सकी। वह गोकुलको अच्छी तरह पहचानती थी। जब उसने देखा कि अब स्वामी खाने-पीनेके बारेमें कोई झगड़ा नहीं करते और जो कुछ मिल जाता है, वही खा-पीकर चुपचाप उठ जाते हैं, तब वह अपने मनमें

बहुत डरी। लड़कपनसे ही गोकुलको खाने-पीनेका विशेष शौक था। स्वयं खाने और दूसरोंको खिलाने, दोनोंसे ही उसे प्रेम था। प्रत्येक रविवारको वह बन्धु-बान्धवोंको अपने यहाँ निमन्त्रित किया करता था। पर इस रविवारको जब मनोरमाने देखा कि इस प्रकारका कोई आयोजन नहीं किया, तब उसने इसका कारण पूछा।

गोकुलने बहुत उदास होकर कहा, "वे सब बातें माँके साथ गईं। राँधकर खिलानेवाला कौन है ?"

मनोरमाने अभिमानपूर्वक कहा, "क्या राँधना पकाना खाली माँने ही सीखा था ? हम लोगोंने नहीं सीखा ?"

गोकुलने कहा, "वह सब तुम अपने बाप और भाईको खिलाओ, मुझे उसकी जरूरत नहीं।"

मनोरमाकी माँ कालीघाटसे लौटते हुए एक दिन आ पहुँची। जब उसे मालूम हुआ कि सौतेली सास नाराज होकर चली गई है, तब उसने अपनी लड़कीकी गृहस्थी सँभाल देना आवश्यक समझकर दो चार दिन उसके यहाँ ठहर जाना ही उचित समझा।

देखते देखते बिगड़ी हुई गृहस्थीकी मरम्मत होकर घरके सब काम फिर ठीक तरहसे चलने लगे और उसने कर्णधार बनकर मजबूत हाथोंसे पतवार पकड़ ली। इस तरह दिन बीतने लगे।

मुहल्ले-टोलेके लोग पहले तो कई दिनोंतक इस बातको लेकर आन्दोलन करते रहे, परन्तु अन्तमें इसे कलियुगका धर्म समझकर चुप हो गये।

मुनुआकी माँके घरका रास्ता इसी तरफसे था। वह बीच बीचमें आकर मिल जाया करती थी। उसकी जबानी गोकुलने भवानीकी नई गृहस्थीका सब हाल सुन तो लिया, पर भला-बुरा कहा कुछ भी नहीं।

उस दिन आनेके समय गाड़ीके पास खड़े होकर गोकुलने रुँधे हुए कण्ठसे जब यह कहा था कि अब हमारे सम्बन्धका यहीं अन्त है, तब भवानीने केवल अभिमानके कारण उस बातपर कोई ध्यान नहीं दिया था। लेकिन जब एक महीना बीत गया और गोकुलने अपनी माँकी कुछ भी खोज खबर नहीं ली तब उसने मन ही मन ठंढी साँस ले ली। इतने सब झगड़े-बखेड़े और नाराजगी हो जानेपर भी भवानीके मनमें इस बातका पूरा पूरा विश्वास नहीं

होता था कि गोकुल सचमुच ही मुझे छोड़ देगा और अपने छोटे भाईको बिलकुल भूल जायगा। इसी लिए जब आज भवानीने मुनुआकी माँकी जबानी सुना कि गोकुलके घरमें उसके ससुर और सास खूब अच्छी तरह जमकर बैठ गये हैं, तब वह केवल स्तब्ध होकर रह गई।

नये मकानमें आनेपर सिर्फ दो चार दिन तो विनोद ठीक-ठिकानेसे रहा, उसके बाद ही उसने अपना वास्तविक स्वरूप प्रकट कर दिया। अब वह अपनी माँकी प्रायः कुछ भी खबर नहीं लेता और रातको घरपर भी नहीं रहता। सबेरे जब वह घर आता तब भवानी दुःख और लज्जाके कारण उसकी ओर देख भी नहीं सकती।

पहले भवानीने सुना था कि विनोदने नौकरी कर ली है, पर यह कुछ भी नहीं सुना था कि उसने कहाँ नौकरी की है और उसे क्या तनख्वाह मिलती है। इसलिए अब भवानीके लिए केवल यही एक बात सन्तोषकी थी कि और चाहे जो हो, पर मैंने अपने लड़के विनोदको धन-सम्पत्तिसे वंचित करके कोई अन्याय या अनुचित कार्य नहीं किया है। क्योंकि वह समझती थी कि अपने ससुर और सासके फेरमें पड़कर गोकुल हम लोगोंके प्रति चाहे कितना ही अन्याद क्यों न करे, परन्तु मेरे स्वामीने इतने कष्टसे जो दूकान जमाई है, कमसे कम उसे तो वह ठीक ठिकाने रखेगा। अपने स्वर्गीय स्वामीकी बात स्मरण करके भवानी इस चिन्तामें भी बहुत कुछ सुख मानती थी। इस तरह उसके दिन बीत रहे थे। आज वैशाखकी संक्रान्ति थी। हर-साल इस तिथिको भवानी खूब ठाठसे ब्राह्मण-भोजन कराती थी। पर अबकी बार एक तो उसके हाथमें रुपया-पैसा नहीं और दूसरे बातों बातोंमें दो एक बार विनोदसे जिक्र करनेपर भी जब उसने कुछ भी ध्यान न दिया, तब उसने इस साल अपना वह संकल्प ही छोड़ दिया। पर अचानक बहुत सबेरे दरवाजेपर कई बार किसीके जोरोंसे पुकारनेकी आवाज सुनाई पड़ी, और मुनुआकी माँने जाकर जब सदर दरवाजा खोला तब देखा कि गोकुल बड़ी व्यस्तताके साथ मकानके अन्दर आ गया है। उसके साथ कई नौकर घी, आटा, कई तरहकी मिठाइयाँ और पके हुए आमोंसे भरे हुए दौरे लिये हुए थे। उसने मकानमें पैर रखते ही कहा, "मैं स्वयं अपने मुहल्लेके सब ब्राह्मणोंको निमंत्रण दे आया हूँ। उस बन्दरके भरोसे इस कामको नहीं छोड़ सका। माँ कहा हैं ! अभी तक शायद सोकर नहीं उठी हैं। अब मैं जाता हूँ और यहाँका काम

काज करनेके लिए कुछ आदमियोंको भेजे देता हूँ। जैसी माँ हैं, वैसा ही लड़का। किसीको कुछ फिक्र ही नहीं है। मानो सारी फिक्र करनेवाला मैं हूँ। अच्छा मुनुआकी माँ, तुम माँसे कह देना कि मैं घण्टे भरके अन्दर ही लौटकर आता हूँ।"

यह कहकर गोकुल जिस प्रकार आया था, उसी प्रकार व्यस्तताके साथ चल दिया।

भवानी बहुत पहले ही सोकर उठ बैठी थी और आड़में खड़ी हुई ये सब बातें सुन रही थी। गोकुलके जाते ही उसकी आँखोंसे आँसुओंकी जोरोंकी धारा बहने लगी। उस दिन रविवार था। आनन्दप्रद 'शनिवारकी रात' बिताकर सबेरे बहुत दिन चढ़े जब विनोद घर आया, तो यह सब देखकर अवाक् हो रहा। मुनुआकी माँसे सारा हाल सुनकर उसने अपनी माँको सुनाते हुए कहा, "भइयाको खबर न देकर माँ मुझसे ही कह देतीं। इसमें मेरा अपमान होता है!"

भवानीने सब कुछ जानकर भी इसका प्रतिवाद नहीं किया, वह चुप हो रही। गोकुलने वापस आकर विनोदको देखकर भी नहीं देखा। वह कामकाजकी व्यवस्था करके और ब्राह्मणों आदिको अच्छी तरह खिला-पिलाकर बिना किसीसे कुछ कहे सुने, चुपचाप वहाँसे खिसकनेका उपक्रम कर ही रहा था कि उसी समय बनर्जी महाशयने उसे सब लोगोंके बीच बुलाकर कहा, "जरा यहाँ आकर बैठो।"

आज वे भी गोकुलद्वारा निमन्त्रित होकर आये थे। इस लिए उसीके रुपयेसे परितोषपूर्वक भोजन करके अपने उस दिनके अपमानका बदला चुकानेके लिए तैयार हो गये। उन्होंने मजूमदार घरानेका बहुत-सा अन्न हजम किया था; इसी लिए निमाई रायके सम्बन्धका उस दिनका अपमान सबसे ज्यादा उन्हींको खला था। उन्होंने सबके सामने विनोदके उद्देश्यसे आँख मिचकाकर कहा, "क्यों भइया, अपने बड़े भाईकी आजकी इस चालका कुछ मतलब समझे?"

बात-चीतके इस ढंगसे गोकुल कुछ संकुचित हो गया।

विनोदने संक्षेपमें कहा, "नहीं।"

बनर्जी महाशयने मृदु और गम्भीर हास्यके उपरान्त कहा, "तब मैंने समझ लिया कि तुम खूब मुकदमा जीतोगे। तुमने बी० ए० एम० ए० तो पास कर

लिया, पर यह भी न समझे कि माँको हर तरहसे अपने हाथमें रखना ही इस चालका मतलब है। क्योंकि मुकदमेका सारा दार-मदार उसीपर है।"

गोकुलका मुँह स्याह पड़ गया। उसने कहा, "नहीं मास्टर साहब, यह बात कदापि नहीं है।" और यह कहते हुए वह जल्दीसे बाहर चला गया।

बनर्जी महाशयने चिल्लाकर कहा, "देखो भाई, गोकुलको अब यहाँ मत घुसने देना। यह तुम्हारा सर्वनाश करके छोड़ेगा।"

गोकुलने भी चलते समय यह बात सुन ली।

विनोद मारे लज्जाके सिर झुकाये बैठा रहा। यह बात नहीं थी कि वह अपने भाईको पहचानता न हो। वह जानता था कि भइया कभी कोई ऐसा काम नहीं कर सकते जिसके अन्दर कोई दूसरा छिपा हुआ उद्देश हो। इसी लिए बनर्जी महाशयकी इन बातोंपर उसने केवल सम्पूर्ण अविश्वास ही नहीं किया, बल्कि इतने लोगोंके सामने उन्होंने भइयाका जो अपमान किया वह उसे बहुत अधिक खला।

जब सब निमन्त्रित लोग बिदा हो गये, तब विनोदने अन्दर जाकर देखा कि माँ अपनी कोठरीका दरवाजा बन्द किये हुए पड़ी हैं। विनोदने बिना किसीसे पूछे ही समझ लिया कि बनर्जीकी बातें माँने भी सुन ली हैं।

दूकानका काम समाप्त करके सन्ध्याको गोकुलने अपने घर आकर देखा कि वहाँ भी मान-लीलाका विशाल अभिनय हो रहा है। स्वयं राय महाशय खाटपर मुँह लटकाये हुए बैठे हैं और नीचे जमीनपर बैठी हुई उनकी कन्या भी अपने पास हिमूको लिये अपने पिताके मुखका अनुकरण कर रही है।

कमरेमें पैर रखते ही राय महाशयने कहा, "यह जो तुमने एक निर्बोधकी तरह अपनी माँसे हम लोगोंका अपमान कराया, इसका क्या प्रतिकार है?"

एक तो यों ही गोकुलका दिमाग बहुत ज्यादा खराब हो रहा था; तिसपर दिन-भरके परिश्रमके कारण वह अतिशय थका हुआ भी था। इस लिए अभियोगका यह ढँग देखकर उसके सारे शरीरमें आग-सी लग गई। मनोरमा भी साँसें लेती और रोती हुई बोली, "अब अगर फिर तुम कभी वहाँ जाओगे, तो मैं गलेमें फाँसी लगाकर मर जाऊँगी।"

लड़कीसे उत्साह पाकर राय महाशयने और भी अधिक गम्भीरतापूर्वक कहा, "वह औरत क्या कोई सीधी—"

गोकुल मानो बमकी तरह फट पड़ा। बोला, "बस चुप रहो। अगर मेरी माँके बारेमें इस तरह बात करोगे तो गरदन पकड़कर बाहर निकाल दूँगा।"

यह कहकर वह खुद ही आँधीकी तरह बाहर चला गया।

राय महाशय और उनकी कन्यापर मानों बिजली आ गिरी। ये दोनों एक दूसरेका मुँह ताकने लगे। गोकुलने यह क्या किया! अपने पूज्यपाद ससुरजीका उसने कैसा भीषण अपमान कर डाला!

१३

विनोदके मित्रोंकी एक खासी मंडली जुट गई थी, जो उसे निरन्तर नालिश करनेके लिए उकसाती रहती थी। कारण, यदि वह हार गया तो उन लोगोंकी कोई हानि नहीं, और यदि जीत गया तो लाभ ही लाभ है, बहुत दिनोंके लिए एक बहुत बढ़िया आमोद-प्रमोदकी व्यवस्था हो जायगी। और यह तो एक प्रकारसे निश्चित ही हो चुका था कि मुकदमा अवश्य लड़ना पड़ेगा। क्यों कि विनोदकी ओरसे जो मित्र आपसमें समझौता कर लेनेका प्रस्ताव लेकर गोकुलके पास गया था उसे उसने यह कहकर निकाल दिया था कि मैं तो उस बदचलन, नीच, पाजीको एक पैसा भी न दूँगा, उससे जो करते बने वह कर ले।

लेकिन इतनी बड़ी जायदादका मुकदमा पेश करनेके लिए रुपये भी तो ज्यादा चाहिए, इस लिए विनोदको देर हो रही थी।

अपने बड़े भाईके ऊपर विनोदको कितना ही अधिक क्रोध क्यों न रहा हो, पर उस वैशाखी संक्रान्तिवाले दिनसे उसका प्राण मानों रो-रो उठता था। इतने आदमियोंके सामने अपमानित होकर वह जिस समय भागा था, उस समयकी उसके मुखकी आर्त्त छबि विनोदके मनसे भुलाये नहीं भूलती थी। उसके अन्दरसे मानों कोई बार बार कहता कि यह अन्याय हुआ है और बहुत बड़ा अन्याय हुआ है, अत्यन्त मिथ्या और कुत्सित अपवाद लगाकर बड़े भाईको भगाया गया है। विनोदने निश्चित रूपसे समझ लिया था कि अब भइया इस जीवनमें कभी भूलकर भी इस घरके रास्तेसे न आवेंगे।

वहाँके पढ़े-लिखे युवकोंमेंसे बहुतेरे विनोदके मित्र थे और विनोदके साथ सभीकी पूरी पूरी सहानुभूति थी। उस दिन सबेरे उन लोगोंने बाहरवाली

बैठकमें बैठकर और मास्टर साहबको बुलाकर बहुत कुछ वाद-विवादके उपरान्त निश्चित किया था कि गोकुलको बातोंके फन्देमें फँसाये बिना काम नहीं चल सकता। यह सभीने समझ लिया था कि गोकुल मूर्ख और अत्यन्त निर्बोध है; इसलिए उसे किसी प्रकार उत्तेजित करके उसके मुँहसे कोई ऐसी बात निकलवानी चाहिए जिससे वह फँस जाय और उसीके आधारपर गवाही खड़ी करनी चाहिए। यह तय हुआ था कि अगले रविवारको सबेरे दस पाँच प्रतिष्ठित और भले आदमी एकत्र होकर गोकुलके मकानपर चलेंगे और वहीं उसे स्वयं उसीकी बातोंके जालमें फँसावेंगे। उस अवसरपर अनुपस्थित अभागे गोकुलके तरह तरहके मज़ाक़ उड़ाये गये और सब लोगोंने इस बातका अभिनय-सा कर दिखलाया कि उस समय कौन, किस तरह, क्या क्या करेगा और कहेगा, पर विनोद चुपचाप सिर झुकाये हुए ही बैठा रहा। पर स्वयं अपने उत्साहके आधिक्यके आगे विनोदके उत्साहके अभावकी ओर किसीका ध्यान ही नहीं गया!

आज विनोद बाहर नहीं गया था और भोजन आदिके उपरान्त अपनी बैठकमें ही बैठा हुआ था। दोपहरको प्रायः एक बजेके लगभग गोकुलने अचानक वहाँ पहुँचकर पूछा, "मुनुआकी माँ, खाना-पीना हो गया?"

मुनुआकी माँ हड़बड़ाकर उठ खड़ी हुई और बड़े बाबूके लिए आसन बिछाकर बोली, "नहीं बड़े बाबू, अभी नहीं हुआ।"

'अभी तक नहीं हुआ?' कहकर गोकुलने खुद ही अपना आसन उठाकर रसोईघरके दरवाजेपर बिछा लिया और उसपर बैठकर कहा, "मुनुआकी माँ, जरा एक गिलास ठंढा पानी तो पिला। मैं तगादा करने निकला था। दोपहरकी इस कड़ी धूपमें भटकते भटकते बहुत परेशान हो गया हूँ। माँ कहाँ हैं?"

भवानी उस समय रसोईघरमें ही थी, लेकिन उस दिनकी घटनाका स्मरण करके मारे लज्जाके गोकुलके सामने नहीं आ सकी। गोकुल जानता था कि विनोद घरमें नहीं है, अपने कामपर गया हुआ है, इसलिए उसने कहना शुरू कर दिया, "सब झूठ है। मुनुआकी माँ, सब झूठ है। इस कलजुगमें क्या कहीं धर्म-कर्म रह गया है? बाबूजीने मरते समय माँको मेरे सुपुर्द करके कहा था, 'लो बेटा गोकुल, इन्हें मैं तुम्हारे सुपुर्द करता हूँ।' मैं सीधा-साधा आदमी हूँ। नहीं तो विनोदकी मजाल थी जो माँको जबरदस्ती यहाँ

ले आता ? क्या मैं उनका लड़का नहीं हूँ ? अगर मैं चाहूँ तो क्या अभी इन्हें यहाँसे जबरदस्ती नहीं ले जा सकता ? मुनुआकी माँ, तू जानती है, बाबूजीका असली वसीयतनामा यह है। खाली चार कलम घसीट देनेसे ही वसीयतनामा नहीं हो जाता।"

मनुआकी माँने आँखके इशारेसे गोकुलको बतलाया कि विनोद घरमें ही है। इसपर गोकुल जलका गिलास वहीं रखकर और जूते पहनकर बिना कुछ कहे-सुने तुरत ही चलता बना।

रातको नौ दस बजेके करीब अचानक रसिक चक्रवर्तीने आकर पूछा, "माँ, बड़े बाबू आज अभीतक मकान नहीं पहुँचे। यहाँसे वह खा-पीकर कब गये ?"

भवानीने चकित होकर कहा, "उसने तो यहाँ खाया नहीं। इधर कहीं तगादेको आया था, सो केवल एक गिलास पानी पीकर ही चला गया था।"

चक्रवर्तीने कहा, "यह लो ! आज बड़े बाबूकी जन्म-गाँठ थी। वे घरसे झगड़ा करके चले आये थे और कह आये थे कि आज माँका प्रसाद खाने जाता हूँ। तब तो मालूम होता है कि आज दिन-भर उन्होंने कुछ खाया ही नहीं।"

यह सुनकर भवानीकी छाती फटने लगी। विनोद बगलवाले कमरेमें था। चक्रवर्तीकी आवाज सुनते ही पास आकर बैठ गया। उसने मज़ाक़में पूछा, "कहिए चक्रवर्ती महाशय, निमाई रायके राज्यमें नौकरी कैसी चल रही है ?"

चक्रवर्तीने चकित होकर कहा, "निमाई राय ? अरे राम राम कहिए, वे क्या दूकानमें घुसने पाते हैं ?"

"मैं तो सुनता हूँ कि वे भइयापर पूरा पूरा कब्जा जमाये बैठे हैं।"

चक्रवर्तीने भवानीकी ओर संकेत करके हँसते हुए कहा, "छोटे बाबू, जब तक ये जीती हैं, तब तक तो ऐसा हो ही नहीं सकता। वे आये तो थे मुझे निकालकर आप ही पूरे पूरे मालिक बनने, पर माँके एक ही हुक्मसे उनके सारे हौसलोंपर पानी फिर गया। अब तो ठग-ठुगकर छिछोरेपनसे जो दो-चार पैसे निकाल लें, वही हैं। दूकानमें तो हाथ लगा ही नहीं सकते।"

इसके बाद चक्रवर्तीने उस दिनका सारा हाल ब्योरेवार सुनाकर कहा, "बड़े बाबू बहुत ही सीधे आदमी हैं, लोगोंके दाँव-पेंच नहीं समझते। लेकिन इससे क्या होता है ! माता-पिताके प्रति उनकी भक्ति तो अचल है।

उस दिन जब उन्होंने कह दिया कि माँका हुक्म रद करनेकी मेरी मजाल नहीं है, तब इतना रोना-धोना और लड़ाई-झगड़ा हुआ कि मत पूछिए। पर उन्होंने किसीकी एक भी न सुनी और बराबर यही कहते रहे कि यह मेरे बाबूजीका हुक्म है—यह मेरी माँका हुक्म है।—छोटे बाबू, पहले जिस तरह सारा काम धन्धा मेरे हाथमें था, उसी तरह अब भी है।"

विनोदकी आँखोंमें जल भर आया। चक्रवर्ती कहने लगे, "छोटे बाबू, ऐसा बड़ा भाई मिलता किसे है? उनकी जबानपर सदा 'विनोद' रहता है। जब देखो, तब यही कहते हैं कि मेरे विनोदकी तरहका इम्तिहान किसीने पास नहीं किया। जितना मेरा विनोद पढ़ा है, उतना और कोई पढ़ा ही नहीं। मेरे विनोदकी तरह किसीका भाई आजतक हुआ ही नहीं। जब लोग आपपर तरह तरहके न जाने कितने अपवाद लगाते हैं, तब वे मुझसे आकर हँसते हुए कहते हैं—चक्रवर्ती महाशय, ये सब साले मेरे भाईसे जलते हैं, इसी लिए दिन रात उसकी बदनामी करते हैं। क्या मुझे इन सालोंने इतना बेवकूफ समझा है कि उनकी बातोंपर विश्वास कर लूँगा?"

कुछ ठहरकर चक्रवर्ती महाशयने फिर कहा, "अभी उस दिन काशीका एक पंडित—यह कहकर कि 'हम ऐसा पुरश्चरण करेंगे जिससे छोटे बाबूका मन अच्छा हो जायगा' सोनेके एक सौ आठ तुलसी-पत्रोंका दाम प्रायः पाँच सौ रुपये बड़े बाबूसे वसूल कर ले गया। मैंने कितना समझाया बुझाया और मना किया, पर उन्होंने एक न सुनी। यही कहा कि हमारा विनोद किसी तरह सँभल जाय, उसकी मति ठिकाने आ जाय और वह एम० ए० पास कर ले, तो मुझे शान्ति मिले। इसमें भले ही मेरा पाँचसौ रुपया चला जाय।"

विनोदने आँखें पोंछकर रुँधे हुए गलेसे कहा, "हाँ चक्रवर्ती महाशय, मैंने भी सुना है कि न जाने कितने लोग भइयाको मेरे नामसे ठग ले जाते हैं।"

चक्रवर्ती महाशयने कुछ और हलका गला करके कहा, "और इसी जयलाल बनर्जीने क्या कम रुपये मारे हैं! सारे अनर्थोंकी जड़ तो असलमें यही पाजी है!"

इसके बाद चक्रवर्तीने मालिककी मृत्युके बाद इन्हीं हजरतकी एक खासी रकम लेकर विनोदका पता ठिकाना ढूँढ़ निकलनेकी कथा भी सुना दी।

भवानीने यह सब सुनकर कुछ भी नहीं कहा, केवल उसकी आँखोंसे श्रावणकी जल-धारा बहती रही।

चक्रवर्तीके बिदा हो जानेपर विनोद सोने चला गया। पर सारी रात उसे नींद न आई। चक्रवर्तीके मुँहसे आज उस इतिहासको जानकर रात-भर वह केवल यही सोचता रहा कि क्यों यह अस्वाभाविक बात हो गई, पिताजी क्यों मुझे इस प्रकार सम्पत्तिसे वंचित कर गये और भइया क्यों मुझे कुछ भी नहीं देना चाहते ?

* * *

विनोदके मित्र बहुत कुछ उद्योग करके और अपने साथ कई प्रतिष्ठित भले आदमियोंको लेकर रविवारके दिन सबेरे ही गोकुलकी बैठकमें जा पहुँचे। गोकुल दूकान जानेकी तैयारी कर रहा था। वह इतने भले आदमियोंको एक साथ आते हुए देखकर कुछ सहम-सा गया। विशेषतः डिप्टी साहबको और सदरआला गिरीश बाबूको देखकर तो उसकी समझमें ही न आया कि मैं इन लोगोंको कहाँ बिठाऊँ और इनकी क्या खातिरदारी करूँ। विनोदका मुख मलिन हो रहा था। वह चुपचाप एक कोनेमें सिर झुकाकर बैठ गया। उसका चेहरा देखनेसे ऐसा जान पड़ता था कि मानों ये लोग उसे बलि चढ़ानेके लिए पकड़कर ले आये हैं।

बनर्जी महाशय भी मौजूद थे, इस लिए बात-चीत उन्हींने शुरू की।

देखते देखते गोकुलका मुँह और आँखें लाल हो गईं। उसने कहा, " अच्छा, इसी लिए इतने लोग आये हैं ! तो जाइए और नालिश करा दीजिए। मैं उस पाजीको एक पैसा भी नहीं दूँगा। वह शराब पीता है। "

इसपर और सब लोग तो चुप रहे, बनर्जी महाशय ही मटककर हँसते हुए बोले, " खैर, मान लिया कि शराब पीता है, पर तुम उसका हक मारनेवाले कौन होते हो ? आखिर इस बातका क्या प्रमाण है कि तुमने अपने पिताके मरनेके समय जालसाजी करके वसीयतनामा नहीं लिखाया ? "

गोकुलने जल-भुनकर चिल्लाते हुए कहा, मैंने जालसाजी की है ! मैं जालसाज हूँ ? कौन साला कहता है ? "

गिरीश बाबू पुराने आदमी थे। उन्होंने कोमल स्वरसे कहा, " गोकुल बाबू, आप इस प्रकार उत्तेजित न हों। जरा शान्त होकर उत्तर दें। "

बनर्जी महाशय पुराने समयकी बहुत-सी बातें जानते थे। इसलिए उन्होंने

आँखें मटकाते हुए कहा, " तब तो फिर तुम्हारी माँको अदालतमें जाकर गवाही देनी पड़ेगी ! "

उन्होंने जो सोचा था ठीक वही हुआ। गोकुल उन्मत्त हो उठा, " क्या मेरी माँको अदालतमें खड़ा कराओगे ? गवाहोंके कठघरेमें ? तो ले जाओ तुम सारी जायदाद । ले जाओ, मुझे नहीं चाहिए । मैं अदालत नहीं जाऊँगा । अपनी माँको ले जाकर काशीवास करूँगा । "

निमाई राय भी मौजूद थे, आँख मिचकाकर बोले, " गोकुल, जरा ठहरो न। ये सब कैसी बातें कह रहे हो ! "

पर गोकुलने अपने ससुरकी बातपर ध्यान ही नहीं दिया । उसने सबके सामने अपना दाहिना पैर बढ़ा दिया और उसी प्रकार चिल्लाकर विनोदसे कहा, " आ कम्बख्त, इधर आ, मैंने यह पैर बढ़ा दिया है । इसको छूकर कह दे कि तेरे भइया जालसाज हैं । अगर इसी समय सारी जायदाद तुझे न दे दूँ, तो मैं वैकुण्ठ मजूमदारका लड़का नहीं । "

निमाई मारे डरके घबरा गये, " अरे यह क्या कर रहे हो ? करने दो न उन्हें नालिश । अदालतमें जो कुछ फैसला होना होगा, हो जायगा । इस तरह कसमें खाने-खिलानेसे क्या होता है ? चलो चलो, अन्दर चलो । "

यह कहकर वे गोकुलका हाथ पकड़कर उसे खींचते हुए अन्दर ले जाने लगे । किन्तु विनोदने सिर उठाकर देखा तक नहीं, वह एक ही भावसे चुपचाप बैठा रहा ।

गोकुलने जोर करके ससुरसे अपना हाथ छुड़ा लिया और कहा, " नहीं, मैं यहाँसे एक कदम भी नहीं हटूँगा । "

कुछ देर ठहरकर गोकुलने आकाशकी ओर देखते हुए कहा, " बाबूजी सुन रहे हैं । उन्होंने मरते समय कहा था कि गोकुल, यह तुम दोनों भाइयोंकी जायदाद है । जब विनोद ठीक रास्तेपर आ जाय, तब उसका जो कुछ हिस्सा हो दे देना । बाबूजी स्वर्गसे देख रहे हैं कि मैं उस सम्पत्तिकी यक्षकी तरह रक्षा कर रहा हूँ । मैं तो दिन-रात ईश्वरसे यही मनाता हूँ कि जल्दी वह दिन आवे, जब कि यह सुधरकर ठीक रास्तेपर चलने लगे और लौटकर अपने घर आवे, और यह कहता है कि मैं जालसाज हूँ ! आ कम्बख्त, आगे आ और मेरा पैर छूकर इन लोगोंके सामने कह दे कि मैंने जालसाजी करके तेरी सम्पत्ति छीन ली है । "

विनोदके बन्धु-बान्धव चारों तरफसे उसे ढकलने लगे, पर वह उठा ही नहीं। बनर्जी महाशयने खड़े होकर और विनोदका हाथ पकड़कर जोरसे खींचते हुए कहा, "विनोद, कहो न पैर छूकर। तुम्हें डर ही काहेका है? भला, ऐसा अच्छा अवसर और कब मिलेगा?"

विनोदने खड़े होकर कहा, "नहीं, ऐसा अच्छा अवसर मुझे फिर न मिलेगा।" फिर दो कदम आगे बढ़कर कहा, "भइया, मैं तुम्हारे पैर छूकर कहता हूँ कि मैं तुम्हें पहचानता हूँ। अगर मैं तुम्हारे पैर छूकर तुम्हें जालसाज कहूँ, तो मेरा यह दाहिना हाथ इसी समय कटकर गिर जाय। यह बात मैं कभी न कह सकूँगा। पर हाँ, आज यही पैर छूकर मैं शपथपूर्वक कहता हूँ कि अब मैं कभी शराब नहीं छुऊँगा। भइया, तुम मुझे आशीर्वाद दो कि आजसे मैं इस योग्य हो जाऊँ कि अपने आपको तुम्हारा छोटा भाई कह सकूँ और तुम्हारे सम्मानकी रक्षा करता हुआ तुम्हारे चरणोंकी छायामें ही अपना सारा जीवन बिता सकूँ।"

यह कहकर विनोद अपने बड़े भाईके बढ़ाये हुए पैरपर सिर रखकर पड़ गया।

समाप्त

अन्धकारमें आलोक

बहुत दिनोंकी बात है। सत्येन्द्र चौधरी एक जमींदारका लड़का था। जब वह बी० ए० पास करके अपने घर लौटा, तब उसकी माँने कहा, "बेटा, वह लड़की बिलकुल लक्ष्मी है। मेरी बात मानो और एक बार जाकर उसे अपनी आँखोंसे देख आओ।"

सत्येन्द्रने सिर हिलाकर कहा, "नहीं माँ, अभी यह मुझसे न होगा। नहीं तो फिर मैं परीक्षामें पास न हो सकूँगा।"

माँने कहा, "क्यों न हो सकेगा? बहू रहेगी मेरे पास और तेरी पढ़ाई लिखाई होगी कलकत्तेमें, मैं तो नहीं समझ सकती कि इससे तेरे पास होनेमें क्या बाधा पड़ेगी?"

सत्येन्द्रने कहा, "नहीं माँ, वह ठीक नहीं होगा। अभी मुझे समय नहीं है।"

यह कहकर सत्येन्द्र बाहर जा रहा था कि उसकी माँने कहा, "जाओ मत, खड़े रहो, एक बात और भी कहनी है।" फिर कुछ रुककर कहा, "बेटा, मैंने उन लोगोंको वचन दे दिया है। क्या तू मेरी बात न रखेगा?"

सत्येन्द्र मुड़कर खड़ा हो गया और कुछ असन्तुष्ट होकर बोला, "मुझसे बिना पूछे ही उन्हें क्यों वचन दिया?"

लड़केकी बात सुनकर माँके मनमें बहुत कष्ट हुआ। उसने कहा, "खैर, मुझसे भूल हो गई। पर तुमको तो अपनी माँकी बात रखनी पड़ेगी। इसके सिवा वह विधवाकी लड़की बहुत दुखिया है। बेटा, मेरी बात सुनो—मान जाओ।"

'अच्छा, फिर कहूँगा' कहकर सत्येन्द्र बाहर चला गया। माँ बहुत देरतक चुपचाप वहीं खड़ी रही। यही उसकी एक मात्र सन्तान थी। सात आठ बरस हुए स्वामीका देहान्त हो चुका है। तबसे बेचारी विधवा स्वयं ही गुमाश्तों ओर कारिन्दोंकी सहायतासे अपनी बहुत बड़ी जमींदारीकी व्यवस्था

करती है। लड़का कलकत्तेमें रहकर किसी कालेजमें पढ़ता है। उसे अपनी जमींदारी वगैरहकी कुछ भी फिक्र नहीं करनी पड़ती। विधवा माँने अपने मनमें सोच रखा था कि जब लड़का वकालत पास कर लेगा, तब मैं उसका ब्याह कर दूँगी और अपने पुत्र तथा पुत्र-वधूपर जमींदारी और गृहस्थीका सब भार देकर निश्चिन्त हो जाऊँगी। उसने यह भी सोचा था कि इससे पहले मैं अपने लड़केको गृहस्थीकी झंझटोंमें फँसाकर उसकी उच्च शिक्षामें बाधक न बनूँगी। पर बीचमें कुछ और ही बात हो गई। स्वामीकी मृत्युके उपरान्त इतने दिनों तक इस बीचमें कोई काज-कर्म नहीं हुआ था। उस दिन किसी व्रतके उपलक्षमें गाँव-भरके सब लोगोंको निमन्त्रित किया गया। उसमें स्वर्गीय अतुलचन्द्र मुकर्जीकी दरिद्र विधवा भी अपनी ग्यारह बरसकी लड़कीको साथ लेकर आई। लड़की उसे बहुत पसन्द आई। वह केवल सुन्दरी ही नहीं, इस छोटी अवस्थामें ही अशेषगुणवती थी और यह बात उसके साथ केवल दो-चार बातें करनेसे ही सत्येन्द्रकी माँकी समझमें आ गई।

उस समय माँने मन ही मन कहा कि अच्छा, मैं अपने लड़केको जरा यह लड़की दिखला तो लूँ। फिर देखूँगी कि वह इसे कैसे ना-पसन्द करता है!

दूसरे दिन जब सत्येन्द्र दोपहरके बाद कुछ खानेके लिए अपनी माँके कमरेमें पहुँचा तब स्तब्ध होकर खड़ा रह गया। उसने देखा कि उसके खानेकी जगहके ठीक सामने ही एक आसनपर हीरे, मानिक और मोतियोंसे सजी हुई मानों कोई वैकुण्ठकी लक्ष्मी बैठी है।

माँने भी कमरेमें पहुँचकर कहा, "खाने बैठो।"

सत्येन्द्रकी मानो तन्द्रा भंग हो गई। उसने कुछ हड़बड़ाकर कहा, "यहाँ क्यों, मैं और किसी जगह बैठकर खा लूँगा।"

माँने मुस्कराते हुए कहा, "तू सचमुच कुछ ब्याह तो कर नहीं रहा है, फिर इस जरा-सी लड़कीके सामने लज्जा किस बातकी!"

'मैं किसीसे लज्जा नहीं करता' कहकर सत्येन्द्र कुछ अप्रतिभ होकर वहीं सामनेवाले आसनपर बैठ गया। माँ वहाँसे चली गई। सत्येन्द्र दो ही मिनटमें बहुत जल्दी जल्दी किसी प्रकार भोजन समाप्त करके उठ गया।

अपनी बाहरवाली बैठकमें पहुँचकर उसने देखा कि इसी बीचमें उसके कई मित्र भी वहाँ आ पहुँचे हैं और चौसर बिछी हुई है। उसने पहलेसे ही

दृढ़तापूर्वक आपत्ति प्रकट करते हुए कहा "मैं किसी तरह नहीं बैठ सकूँगा। मेरे सिरमें बहुत सख्त दर्द हो रहा है *।" इतना कहकर वह एक कोनेमें चला गया और तकियेपर सिर रखकर आँखें बन्द करके लेट गया। मित्रोंको मन ही मन कुछ आश्चर्य हुआ। उन्होंने खेलनेवालोंकी कमीके कारण चौसर उठाकर शतरंज ला बिछाई। सन्ध्या तक कई बाजियाँ हुईं, बहुत-सी बातें और कहा-सुनी हुई, पर सत्येन्द्र न तो एक बार भी अपने स्थानसे उठा और न उसने किसीसे यही पूछा कि कौन हारा और कौन जीता। आज उसे ये सब बातें अच्छी ही नहीं लग रही थीं।

जब उसके मित्र चले गये, और वह मकानके अन्दर पहुँचकर सीधा अपने सोनेके कमरेमें जा रहा था, तब भंडारवाले बरामदेमेंसे माँने पूछा "तू आज अभीसे सोने क्यों जा रहा है?"

सत्येन्द्रने कहा, "मैं सोने नहीं, पढ़ने जा रहा हूँ। एम० ए० की पढ़ाई मामूली नहीं होती, समय नष्ट करनेसे कैसे काम चलेगा!"

इतना कहकर वह धम् धम् शब्द करता हुआ ऊपर चला गया।

आध घण्टा बीत गया, पर उसने एक सतर भी नहीं पढ़ी। टेबुलपर सामने किताब खुली हुई रखी थी और वह कुरसीपर पसरा हुआ ऊपरकी तरफ मुँह करके छतकी कड़ियाँ गिन रहा था। अचानक उसका ध्यान टूट गया, उसने कान खड़े करके सुना—झम्! क्षण-भर बाद ही फिर सुनाई पड़ा—झम् झम्! सत्य सीधी तरहसे बैठ गया। इतनेमें उसने सिरसे पैरोंतक गहने पहने हुई वही लक्ष्मीस्वरूपा कन्या धीरे धीरे आती हुई देखी। वह आकर उसके पास खड़ी हो गई। सत्य टकटकी लगाकर देखने लगा। लड़कीने बहुत ही कोमल स्वरसे कहा, "माँने आपकी सम्मति पूछी है।"

सत्यने कुछ देर तक चुप रहनेके बाद पूछा, "किसकी माँने?"

*बंगालियोंमें यह प्रथा है कि जब किसीका विवाह होनेको होता है, तब वह अपने घनिष्ठ मित्रोंके साथ पहले भावी वधूको पसन्द करनेके विचारसे देखता है। इस अवसरपर अनेक प्रकारके परिहास और वधूकी अनेक प्रकारकी परिक्षाएँ होती हैं। इसीके लिए उसके मित्र वहाँ एकत्र हुए थे और उनका अभिप्राय समझकर सत्येन्द्रने बीमारीका बहाना किया था। —अनुवादक

लड़कीने कहा, "मेरी माँने।"

सत्यको इसका कोई उत्तर ढूँढ़े न मिला। कुछ देर बाद उसने कहा, "मेरी माँसे पूछ लेना, उन्हींसे मालूम हो जायगा।"

लड़की वहाँसे जा ही रही थी कि सत्य सहसा उससे पूछ बैठा, "तुम्हारा नाम क्या है?"

लड़की 'मेरा नाम राधा-रानी है' कहकर चली गई।

२

उस जरा-सी राधा-रानीके ध्यानसे बलपूर्वक अपना पीछा छुड़ाकर सत्य एम० ए० पास करनेके लिए कलकत्ते चला आया। उसने निश्चय कर लिया कि जब तक मैं विश्वविद्यालयकी समस्त परीक्षाओंमें उत्तीर्ण न हो जाऊँगा, तब तक किसी प्रकार विवाह न करूँगा; और यदि संभव हुआ तो उसके बाद भी न करूँगा; कारण गृहस्थीके झगड़ोंमें फँसनेसे मनुष्यका आत्म-सम्मान नष्ट हो जाता है, इत्यादि इत्यादि। तो भी रह-रहकर उसके मनमें न जाने क्या होने लगता है और यदि कभी कहीं कोई स्त्री दिखाई पड़ जाती है तो उसके पास ही एक और छोटा-सा मुख उसे दिखाई पड़ने लगता है और वही छोटा मुख उस स्त्रीको आवृत करके अकेला ही विराजता रह जाता है। इस प्रकार सत्य किसी तरह उस लक्ष्मीकी प्रतिमाको भुला नहीं सका है। वह सदासे स्त्रियोंकी ओरसे उदासीन था, पर अब अकस्मात् उसे न जाने क्या हो गया है कि जब कभी वह रास्तेमें या और कहीं किसी वयस्क लड़कीको देखता है, तो उसका जी चाहता है कि मैं उसे अच्छी तरह देखूँ। हजार चेष्टाएँ करनेपर भी वह किसी प्रकार उसकी ओरसे अपनी दृष्टि नहीं हटा सकता। देखते देखते हठात्, और सम्भव है कि अत्यन्त लज्जाके कारण उसका सारा शरीर सिहर उठता और वह तुरन्त ही वहाँसे जिधर मुँह उठता उधर ही जल्दीसे खिसक जाता।

सत्यको तैरकर स्नान करनेका बहुत शौक था। उसके चोर बागानवाले मकानसे गंगा अधिक दूर नहीं थी और इसी लिए वह प्रायः जगन्नाथ-घाट-पर स्नान करने जाया करता था।

आज पूर्णिमाका दिन था। घाटपर कुछ भीड़ हो रही थी। गंगा-किनारे आकर जिस उड़िया ब्राह्मणके पास अपने सूखे वस्त्र आदि रखकर जलमें उतरता था, उसीकी ओर जब वह बढ़ा जा रहा था, तब एक जगह बाधा पाकर उसे कुछ रुक जाना पड़ा। वहाँ उसने देखा कि चार पाँच आदमी एक तरफ देख रहे हैं। सत्यने उनकी दृष्टिका अनुसरण करके ज्यों ही देखा त्यों ही वह विस्मयसे स्तब्ध हो गया। उसे ऐसा जान पड़ा कि मैंने एक साथ इतना अधिक रूप आज तक कभी किसी स्त्री-शरीरमें देखा ही नहीं। उसकी अवस्था अठारह-उन्नीस वर्षसे अधिक नहीं थी। वह एक मामूली काली किनारकी सफेद धोती पहने थी। उसके सारे शरीरमें कोई गहना नहीं था। वह घुटनोंके बल बैठी हुई मस्तकपर चन्दनकी छाप लगवा रही थी और उसका परिचित पण्डा एकाग्र मनसे उस सुन्दरीके मस्तक और नाकपर चन्दन चर्चित कर रहा था।

सत्य पास जाकर खड़ा हो गया। पण्डेको सत्यसे भी यथेष्ट दक्षिणा मिला करती थी, इसी लिए उसने उस रूपसीके चन्द्र-मुखकी खातिरदारी छोड़कर अपने हाथका छापा फेंककर बड़े बाबूके सूखे वस्त्र लेनेके लिए हाथ बढ़ाया।

दोनोंकी आँखें चार हो गईं। सत्य जल्दीसे अपने कपड़े पंडेके हाथमें देकर सीढ़ियाँ उतरता हुआ जलमें जा पहुँचा। पर आज वह तैरा नहीं और किसी प्रकार जल्दी जल्दी स्नान करके जब कपड़े बदलनेके लिए ऊपर पहुँचा तब उसने देखा कि वह असामान्य रूपसी वहाँसे चली गई है।

उस रोज दिन-भर सत्यका मन गंगा गंगा करता रहा। दूसरे दिन पूरी तरहसे सबेरा भी नहीं होने पाया था कि गंगा माताने उसे इतनी जोरसे अपनी तरफ खींचा कि वह खूँटी परसे एक धोती लेकर तुरन्त गंगाजीकी तरफ चल पड़ा।

घाटपर पहुँचकर उसने देखा कि वह अपरिचिता रूपसी स्नान करके अभी अभी ऊपर आई है। जब सत्य स्नान करके स्वयं पंडाके पास पहुँचा, तब वह रूपसी भी पहले दिनकी तरह पंडेसे ललाटमें चन्दन लगवा रही थी। आज भी दोनोंकी आँखें चार हुईं, आज भी उसके सारे शरीरमें बिजली दौड़ गई और वह किसी प्रकार जल्दीसे कपड़े बदलकर वहाँसे चला।

३

सत्यने समझ लिया कि यह स्त्री नित्य ही प्रातःकाल स्नान करनेके लिए आया करती है। अब तक जो हम दोनोंका साक्षात् नहीं हो सका, इसका कारण यह है कि मैं इससे पहले स्वयं ही देर करके स्नान करने आया करता था।

गंगा-किनारे सात दिनोंसे बराबर दोनोंकी देखा-देखी होती आ रही है, पर आज तक कोई बात-चीत होनेकी नौबत नहीं आई। कारण, जहाँ केवल आँखों-आँखोंमें बातें होती हैं वहाँ मुखको मूक होकर ही रहना पड़ता है। वह अपरिचिता रूपसी चाहे जो हो, पर उसने आँखोंसे बातें करनेकी शिक्षाका यथेष्ट अभ्यास किया है, एवं इस विद्यामें वह पारदर्शिनी है, सत्यके अन्तर्यामीने इस बातको अपने निभृत अन्तरमें अनुभव कर लिया।

उस दिन वह जब स्नान करके कुछ अन्यमनस्कतासे अपने घर लौट रहा था, तब अचानक उसे सुनाई पड़ा, "ज़रा सुनिए तो!" उसने सिर उठाकर देखा तो रेल्वे लाइनके उसपार वही रमणी खड़ी हुई है। उसकी कमरपर बाईं ओर जलकी भरी हुई पीतलकी एक छोटी कलसी है और दाहिने हाथमें गीली धोती। उसने सिर हिलाकर संकेतसे बुलाया। सत्य इधर उधर देखकर उसके पास जा खड़ा हुआ। उसने उत्सुक नेत्रोंसे देखकर मृदु स्वरसे कहा, "आज मेरी नौकरानी नहीं आई है। यदि आप कृपाकर मुझे कुछ दूर तक पहुँचा दें, तो बहुत अच्छा हो।" हमेशा वह अपने साथ एक नौकरानी लेकर आया करती थी, पर आज अकेली थी। सत्यके मनमें कुछ दुबिधा हुई कि यह ठीक नहीं है। उसने एक बार चाहा भी, पर वह किसी तरह अपने मुँहसे 'नहीं' न कह सका। रमणी उसके मनका भाव समझकर कुछ हँसी और इस प्रकारकी हँसी जिन्हें आती है, उनके लिए संसारमें कुछ भी अप्राप्य नहीं है। सत्य तुरन्त ही 'चलिए' कहकर उसके पीछे हो लिया। दो-चार कदम आगे बढ़नेपर स्त्रीने फिर कहा, "नौकरानी बीमार है, वह आ नहीं सकी। लेकिन मैं भी बिना गंगा-स्नान किये नहीं रह सकती; और देखती हूँ कि आपको भी यह बुरी आदत पड़ी हुई है!" सत्यने धीरेसे कहा, "जी हाँ, मैं भी प्रायः गंगा-स्नान करने आता हूँ।"

"यहाँ आप कहाँ रहते हैं?"

" मेरा मकान चोर-बागानमें है।"

" मेरा मकान जोड़ा-साँकूमें है। आप मुझे पथरियाघाटके मोड़ तक पहुँचा दीजिएगा और तब बड़ी सड़कसे चले जाइएगा।"

" अच्छी बात है।"

फिर बहुत देर तक दोनोंमें कोई बात-चीत नहीं हुई। चितपुरवाली सड़कपर पहुँचकर स्त्री घूमकर खड़ी हो गई और फिर वही हँसी हँसकर बोली, " बस, मेरा मकान पास ही है, अब आप जा सकते हैं—नमस्कार।"

सत्य नमस्कार करके गर्दन नीचे किये जल्दीसे चला गया। उस रोज उसके मनकी जो अवस्था रही वह लिखकर बतलाना असम्भव है। उस दिन क्या हुआ था, यह केवल वही अनुभव कर सकेंगे जिन्हें यौवन-कालमें पंचशरके प्रथम पुष्प-बाणका आघात सहना पड़ा है। सब लोग यह बात नहीं समझ सकेंगे कि किस उन्मादके नशेमें मत्त होनेपर जल-स्थल आकाश-पाताल सब रंगीन दिखने लगते हैं और इस प्रकार सारा चैतन्य, अपनी सारी चेतना खोकर, एक प्राणहीन चुम्बकके टुकड़ेकी तरह, केवल उसी एक ओर खिंच जानेके लिए प्रत्येक पल उन्मुख हो रहता है।

दूसरे दिन सबेरे सत्यने जागकर देखा कि धूप निकल आई है। व्यथाकी एक तरंग उसके कण्ठ तकको झकझोरती हुई निकल गई और उसने निश्चित रूपसे समझ लिया कि आजका सारा दिन बिलकुल ही व्यर्थ गया। नौकर सामनेसे चला जा रहा था। उसे खूब डपटकर कहा, " हरामजादे, इतना दिन चढ़ गया और तूने मुझे जगाया तक नहीं। जा, तुझपर एक रुपया जुरमाना करता हूँ।"

उस बेचारेके होश-हवाश गुम हो गये और वह चुपचाप देखता रह गया। सत्य बिना दूसरा वस्त्र लिये ही गुस्सेसे भरा हुआ घरसे निकल गया।

बाहर आते ही उसने किरायेकी एक गाड़ी ली और गाड़ीवानको पथरियाघाटसे होकर चलनेका हुक्म देकर रास्तेके दोनों तरफ प्राणपणसे अपनी आँखें बिछा दीं। पर जब गंगाजीके पास पहुँचकर उसने घाटकी ओर देखा, तब उसका सारा क्षोभ शान्त हो गया। बल्कि ऐसा जान पड़ा कि मैंने मानों अकस्मात् सड़कपर पड़ा हुआ एक अमूल्य रत्न पा लिया है।

ज्यों ही सत्य गाड़ीसे उतरा, त्यों ही उस स्त्रीने मुस्कराकर नितान्त परिचितोंकी तरह कहा, "आज बहुत देर कर दी ? मैं आध घंटेसे यहाँ खड़ी हूँ। जल्दी नहा लीजिए। आज भी मेरी नौकरानी नहीं आई है।"

'बस, एक मिनट और ठहर जाइए।' कहकर सत्य जल्दीसे जलमें उतरा। उसका तैरना न जाने कहाँ चला गया। वह जैसे तैसे जल्दी जल्दी दो तीन डुबकियाँ लगाकर आ पहुँचा और बोला, "मेरी गाड़ी कहाँ गई ?"

रमणीने कहा, "मैंने किराया देकर विदा कर दिया है।"

"आपने किराया दिया ?"

"हाँ दे दिया, चलिए," कहकर वह एक बार और भुवनमोहिनी हँसी हँसकर आगे बढ़ गई।

सत्य एकबारगी अपना दिल दे बैठा था, नहीं तो लाख निरीह और लाख अनभिज्ञ होनेपर भी उसे एक बार अवश्य सन्देह होता कि आखिर यह सब क्या मामला है।

रास्ता चलते चलते रमणी बोली, "आपने अपना मकान कहाँ बतलाया था ? चोर-बागानमें ?

"हाँ।"

"वहाँ क्या केवल चोर ही रहते हैं ?"

सत्यने चकित होकर पूछा, "क्यों ?"

"आप चोरोंके राजा जो ठहरे !"

इतना कहकर रमणी गरदन कुछ टेढ़ी करके कटाक्ष करती और मुस्कराती हुई फिर चुपचाप मराल-गतिसे चलने लगी। आज उसकी कमरपर जो कलसी थी, वह कुछ बड़ी थी और उसमें भरा हुआ गंगा-जल छला-छल छला-छल शब्दोंके द्वारा मानों कह रहा था 'अरे मुग्ध, अरे अन्ध युवक, सावधान ! यह सब छल है—यह सब धोखा है।' और इस प्रकार वह जल उछल उछलकर कभी व्यंग और कभी तिरस्कार करने लगा।

मोड़के पास पहुँचकर सत्यने संकोचके साथ कहा, "गाड़ीका किराया ?"

रमणी मुड़कर खड़ी हो गई और अस्फुट तथा कोमल स्वरसे बोली, "एक तरहसे वह आपका ही दिया हुआ ही तो है !"

सत्यने इस इशारेको न समझकर पूछा, "मेरा दिया हुआ कैसे ?"

"मेरे पास अब अपना है ही क्या, जो मैं दूँगी ? जो कुछ मेरा था, वह सब तो तुमने पहले ही चोरी और डकैती करके ले लिया है।"

इतना कहकर उसने तत्काल ही मुँह फेर लिया। मानों वह अपनी उच्छ्वसित हँसीके वेगको बलपूर्वक रोकने लगी।

यह अभिनय सत्य नही देख सका, इसी लिए चोरीके इस प्रच्छन्न संकेतने तीव्र विद्युत्-रेखाकी तरह उसके संशय-जालको आर-पार विदीर्ण करके हृदयके अन्तस्तल तक प्रकाशित कर दिया। उसी समय उसका जी चाहा कि मैं इस आम सड़कपर ही इसके लाल लाल पैरोंपर लोट जाऊँ। लेकिन इसके बाद पल-भरमें ही बहुत अधिक लज्जाके कारण उसका सिर इस प्रकार नीचे झुक गया कि वह फिर सिर उठाकर अपनी प्रियतमाके मुखकी ओर देख भी न सका और चुपचाप सिर झुकाये धीरे धीरे चला गया।

रमणीके आज्ञानुसार नौकरानी फूटपाथपर खड़ी हुई राह देख रही थी। वह पास आकर बोली, "अरे तुम इस बेचारेको क्यों इस तरह नचाती फिरती हो ! इसके पास कुछ है भी ? चार पैसे मिल भी सकेंगे ?"

रमणीने हँसते हुए कहा, "सो तो नहीं जानती, पर इस तरहके बेवकूफोंको नाकमें नकेल पहनाकर चक्कर खिलानेमें मुझे बड़ा मजा आता है।"

दासीने कुछ देर तक खूब हँसनेके बाद कहा, "यह भी तुम कर सकती हो ! पर और चाहे जो कहो, देखनेमें किसी राजाका-सा लड़का मालूम होता है। जैसा बढ़िया चेहरा-मोहरा है, वैसा ही बढ़िया रंग भी है और तुम दोनोंका जोड़ा भी खूब मिलता है। जब तुम खड़ी खड़ी उससे बातें कर रही थीं, तब ऐसा मालूम होता था कि मानों एक जोड़ी गुलाबके फूल खिले हुए हैं !"

रमणीने मुस्कराते हुए कहा, "अच्छा चल। अगर पसन्द आ जाय, तो न हो तू ही ले लेना।"

पर नौकरानी भी सहजमें हारनेवाली नहीं थी। उसने भी उत्तर दिया—

"दीदी, तुम यह चीज़ जीते-जी किसीको न दे सकोगी, यह मैं अभीसे कहे देती हूँ।"

४

ज्ञानियोंका कथन है कि आँखों-देखी भी असंभव घटना किसीसे मत कहो। कारण, अज्ञानी उसपर विश्वास नहीं करते। इसी अपराधमें बेचारे श्रीमन्तको * मसान जाना पड़ा था। जो हो, यह बात बिलकुल ठीक है कि सत्यने उस दिन घर लौटकर टेनिसनकी कविताएँ पढ़ी थीं और वह 'डान जुआन'का बंगला अनुवाद करने बैठा था। वह इतना बड़ा हो गया

---

* बंगलामें कवि-कंकण श्रीमुकुन्दराम चक्रवर्तीका लिखा हुआ 'चंडी काव्य' नामका एक प्रसिद्ध ग्रन्थ है, जिसमें 'श्रीमन्त' नामक एक वणिककी कथा है। कहते हैं, एक व्यापारी जब व्यापार करनेके लिए सिंहल जाने लगा, तब उसकी स्त्रीको चार मासका गर्भ था। चलते समय वह अपनी स्त्रीसे कह गया कि यदि मैं किसी कारणसे लौटकर घर न आऊँ, तो तुम्हारे गर्भसे जो पुत्र उत्पन्न हो, उसीको मेरा पता लगानेके लिए सिंहल भेजना। इस व्यापारीने सिंहल जाते हुए समुद्रमें कमलपर बैठी हुई एक स्त्रीको देखा और सिंहल पहुँचकर वहाँके राजासे उस कमल-कामिनीका वर्णन किया। राजाने कहा कि तुम मुझे उस कमल-कामिनीको दिखलाओ। वणिक् राजाको अपने साथ लेकर गया, परन्तु समुद्रमें कहीं कमल-कामिनी न दिखाई पड़ी। इसपर राजाने उसे कारागारमें बन्द कर दिया।

उधर स्त्रीके गर्भसे जो बालक उत्पन्न हुआ, उसका नाम 'श्रीमन्त' रक्खा गया। वह बाल्यावस्थासे ही चंडीका भक्त था। अपने पिताका पता लगानेके लिए वह सिंहलको चल दिया। मार्गमें जब कभी उसपर कोई विपत्ति आती थी, तब चण्डी प्रत्यक्ष दर्शन देकर उसकी रक्षा करती थी। उसे भी एक स्थानपर चण्डी उसी कमल-कामिनीके रूपमें दिखाई पड़ी। श्रीमन्तने सिंहल पहुँचकर अपने पिताका पता लगाया तो मालूम हुआ कि मेरे पिता यहाँके राजाको कमल-कामिनी नहीं दिखा सके, इसी अपराधमें कारागारमें बन्द कर दिये गये हैं। सोलह वर्षके बालक श्रीमन्तने राजासे जाकर कहा कि मैंने भी वह कमल-कामिनी देखी है। राजा उसके साथ भी गया, परन्तु कमल-कामिनी न दिखाई पड़ी। इसपर राजाने आज्ञा दी कि इसका सिर काट डालो। जब वणिकका सिर काटनेके लिए उसे श्मशानमें ले गये, तब चण्डीने एक वृद्धाके रूपमें प्रकट होकर श्रीमन्तकी रक्षा की, उसके पिताको कारागारसे मुक्त कराया, श्रीमन्तको राजासे सिंहलका आधा राज्य दिलवाया और अन्तमें राजकुमारीके साथ उसका विवाह करा दिया।

—अनुवादक।

था, पर फिर भी उसके मनमें जरा भी सन्देह नहीं हुआ कि दिन-दहाड़े, इतने बड़े कलकत्ते शहरकी आम सड़क और घाटपर, ऐसे अद्भुत प्रेमकी बाढ़ कैसे आ सकती है तथा उस बाढ़की लहरोंमें डूबकर चलना उसके लिए कहाँ तक निरापद है !

दो दिन बाद जब दोनों फिर उसी तरह स्नान करके घर लौट रहे थे, तब रास्तेमें उस अपरिचिताने सहसा कहा, "कल रातको मैं थिएटर देखने गई थी। बेचारी सरलाका त्रास देखकर छाती फटने लगी।"

सत्यने सरलाका नाटक तो नहीं देखा था, पर हाँ, 'स्वर्णलता' पुस्तक अवश्य पढ़ी थी, इस लिए उसने धीरेसे कहा, "हाँ, बेचारी बड़े कष्टसे मरी थी।"

उसने लम्बी साँस लेकर कहा, "ओह, उसे कितना भीषण कष्ट हुआ था। तुम बदला सकते हो कि सरलाने अपने पतिको इतना क्यों चाहा और उसकी जेठानी क्यों प्रेम नहीं कर सकी?"

सत्यने संक्षेपमें उत्तर दिया, "अपना अपना स्वभाव।"

"हाँ, यहीं बात है। ब्याह तो सभीका होता है, पर क्या सभी स्त्रियाँ और पुरुष एक दूसरेपर समान रूपसे प्रेम कर सकते हैं? नहीं। ऐसे बहुतसे लोग होते हैं जो मरते दम तक यह भी नहीं जानते कि प्रेम किसे कहते हैं, जाननेकी शक्ति ही उनमें नहीं होती। देखते नहीं, बहुतसे लोग ऐसे होते हैं जिनके सामने हजार अच्छा गाना बजाना हुआ करे, पर फिर भी वे मन लगाकर नहीं सुन सकते और बहुत-से किसी बातसे भी क्रोधित नहीं होते, क्रोध कर ही नहीं सकते। लोग उनकी बहुत तारीफ करते हैं, पर मेरा तो जी उनकी निन्दा करनेको ही चाहता है।"

सत्यने कुछ मुस्कराते हुए पूछा, "क्यों?"

रमणीने उद्दीप्त कंठसे उत्तर दिया, "इसलिए कि वे अक्षम होते हैं। अक्षमतामें थोड़ा बहुत गुण भी हो तो सकता है; परन्तु दोष ही अधिक है। यही जैसे सरलाका जेठ। स्त्रीके इतने बड़े अत्याचारसे भी उसे क्रोध नहीं आया।"

सत्य चुप रहा, उसने फिर कहना आरम्भ किया, "और उनकी स्त्री प्रमदा भी कैसी शैतान है! अगर मैं होती तो उस राक्षसीका गला ही घोंट देती।"

सत्यने हँसते हुए कहा, "पर तुम होतीं कैसे? प्रमदा नामकी सचमुच कोई औरत तो थी नहीं—वह तो कविकी कल्पना मात्र—"

रमणीने बीचमें ही रोककर कहा, " तो फिर कविने ऐसी कल्पना ही क्यों की ? अच्छा, सभी कहते हैं कि सब मनुष्योंके अन्तःकरणमें भगवान् हैं, आत्मा है, परन्तु प्रमदाका चरित्र देखनेसे तो नहीं मालूम होता कि उसके अंतरमें भगवान् थे । मैं तुमसे सच कहती हूँ, कहाँ होना तो यह चाहिए कि बड़े बड़े आदमियोंकी पुस्तकें पढ़कर लोग भले बनें और एक दूसरेके साथ प्रेम करें, सो तो नहीं, एक ऐसी किताब लिखकर रख दी कि जिसे पढ़ते ही मनुष्यके प्रति मनुष्यके मनमें घृणा उत्पन्न हो जाय और इस बातपर विश्वास ही न हो कि सचमुच ही सब लोगोंके अन्तकरणमें भगवानका मन्दिर है । "

सत्यने विस्मित होकर उसकी मुखकी ओर देखते हुए कहा, " मैं देखता हूँ कि तुम खूब किताबें पढ़ती हो ? "

रमणीने उत्तर दिया, " अँगरेजी तो जानती नहीं, पर हाँ, बंगलाकी जितनी किताबें निकलती हैं, सभी पढ़ती हूँ । कभी कभी तो ऐसा होता है कि मैं सारी सारी रात पढ़ती ही रहती हूँ । यही तो बड़ी सड़क है, चलो न, मेरे मकानपर जितनी किताबें हैं, सब तुमको दिखलाऊँगी । "

सत्यने चौंककर पूछा, " तुम्हारे मकानपर ? "

वह बोली, " हाँ, मेरे मकानपर । चलो, तुम्हें चलना पड़ेगा । "

हठात् सत्यका चेहरा पीला पड़ गया । उसने डरते हुए कहा, " नहीं नहीं । छीः छीः—"

" छीः छीः कुछ नहीं । चलो । "

" नहीं नहीं, आज नहीं, आज रहने दो । "

इतना कहकर सत्य काँपते हुए पैरोंसे शीघ्रतापूर्वक चल दिया । आज उसे अपनी इस अपरिचिता प्रेमिकाके प्रति श्रद्धा उत्पन्न हो गई, जिसके भारसे उसका हृदय अवनत हो गया ।

५

सवेरे गंगा-स्नान करके सत्य धीरे धीरे अपने डेरेपर लौट आया था । उसकी दृष्टि क्लान्त और सजल थी । उसकी पलकें अभीतक भीगी हुई थीं । आज चार दिन हो गये हैं, वह अपनी उस अपरिचिता प्रियतमाको नहीं देख पाया । आज कल वह गंगा-स्नान करने नहीं आती ।

इधर कई दिनसे उसने आकाश-पातालकी न जाने कितनी बातें सोची हैं, उसकी सीमा ही नहीं। बीच बीचमें उसके मनमें यह दुश्चिन्ता भी उत्पन्न हुई कि कहीं ऐसा न हो कि वह इस संसारमें ही न रह गई हो, अथवा कहीं ऐसा न हो कि वह मृत्यु-शय्यापर पड़ी हो, न जाने उसे क्या हुआ ?

वह उस गलीको तो जानता था, पर और कुछ भी नहीं पहिचानता था। किसका मकान है और वह कहाँ है, यह कुछ नहीं जानता था। याद करनेसे पश्चात्ताप और आत्म-ग्लानिके कारण हृदय दग्ध हुआ जाता था। क्यों न मैं उस दिन साथ जाकर मकान देख आया ? क्यों मैंने उस दिन उसके इतने बड़े अनुरोधकी उपेक्षा की ?

उसे सचमुच ही प्रेम हो गया था और वह सिर्फ आँखोंका नशा नहीं, हृदयकी गहरी प्यास थी। उसमें छल या कपटकी कहीं छाया भी नहीं थी, जो कुछ था, वह सचमुच ही हार्दिक स्नेह था।

" बाबूजी ! "

सत्यने चौंककर देखा कि उसकी वही दासी जो साथ आया करती थी रास्तेके एक किनारे खड़ी हुई है।

सत्य कुछ घबराया हुआ जल्दीसे उसके पास जा पहुँचा और भर्राई हुई आवाजसे उसने पूछा, " उन्हें क्या हुआ है ? " और तत्काल ही वह रो पड़ा, अपने आपको सँभाल ही न सका। दासीने सिर झुकाकर किसी प्रकार अपनी हँसी छिपाई। शायद उसने इस डरसे कि कहीं मुझे सत्यके सामने ही जोरसे हँसी न आ जाय सिर झुकाये हुए ही कहा, " उनकी तबीयत बहुत खराब है, वह आपको देखना चाहती हैं। "

" अच्छी बात है। चलो। "

यह कहकर सत्य आँसू पोंछता हुआ उसके पीछे पीछे चल दिया। कुछ दूर बढ़कर उसने दासीसे पूछा, " क्या बीमारी है ? क्या बहुत ज्यादा बढ़ गई है। "

दासीने कहा, " नहीं, कोई बड़ी बीमारी तो नहीं है, पर बुखार बहुत तेज है। "

सत्यने मन ही मन ईश्वरको मनाया और दासीसे फिर कोई प्रश्न नहीं किया। मकानके सामने पहुँचकर देखा कि मकान बहुत बड़ा है और उसके दरवाजेपर एक हिन्दुस्तानी दरवान बैठा हुआ ऊँघ रहा है। दासीसे पूछा, मेरे जानेसे उनके पिता नाराज तो न होंगे ? वे तो मुझे पहिचानते नहीं। "

दासीने कहा, " उनके पिता नहीं हैं, खाली माँ हैं । पर उनकी तरह उनकी माँ भी आपको बहुत प्यार करती हैं । "

सत्यने और कुछ कहे बिना उस मकानमें प्रवेश किया ।

सीढ़ियाँ पार करके तीसरी मंजिलके बरामदेमें पहुँचकर उसने देखा कि बराबर बराबर तीन कमरे हैं और बाहरसे देखनेपर सभी खूब सजे हुए जान पड़ते हैं। कोनेवाले कमरेमेंसे जोरकी हँसीके साथ तबले और घुँघरुओंके बजनेकी आवाज आ रही है । दासीने उसीकी तरफ हाथसे इशारा करके कहा, " यही कमरा है, अन्दर चलिए । "

इतना कहकर दासी कुछ और आगे बढ़ी और उसने दरवाजेके आगे पड़ा हुआ परदा हाथसे हटाते हुए खूब ऊँची आवाजसे कहा, " लो दीदी, ये हैं तुम्हारे नागर ! "

कमरेमें जोरका ठहाका लगा और शोर मच गया । वहाँ सत्यने जो कुछ देखा उससे उसका सिर चकरा गया । उसे ऐसा जान पड़ा कि हठात् मैं बेहोश होकर गिरना चाहता हूँ । किसी प्रकार चौखटका सहारा लेकर और आँखें बन्द करके वह वहीं दरवाजेपर बैठ गया ।

उसे कमरेमें तख्तपर खूब मोटा गद्दा बिछा था और उसपर दो तीन आदमी बैठे हुए थे जो देखनेमें भले आदमी-से जान पड़ते थे । एक हारमोनियम और दूसरा तबला रखे बैठा था । एक आदमी खूब मजेमें शराब पी रहा था । ऐसा जान पड़ता था कि वह युवती अभी नाच रही थी । उसके दोनों पैरोंमें घुँघरू बँधे हुए थे, सारा शरीर नाना गहनोंसे सजा हुआ था और उसकी सुरा-राग-रंजित आँखें झूम रही थीं । वह जल्दीसे सत्यके पास आ पहुँची और उसका हाथ पकड़कर खूब खिलखिलाकर हँसती हुई बोली, "अरे यार, कहीं तुम्हें मिरगीकी बीमारी तो नहीं है ?—लो भाई, अब मज़ाक रहने दो, उठो, मुझे इससे बड़ा डर लगता है । "

जिस प्रकार कोई हत-चेतन मनुष्य प्रबल विद्युत्के स्पर्शसे काँप उठता है, ठीक उसी प्रकार उस युवतीके कर-स्पर्शसे सत्य भी सिरसे पैर तक काँप उठा।

रमणीने कहा, " मेरा नाम है श्रीमती बिजली, और क्यों दोस्त, तुम्हारा क्या नाम है—बुद्धू या सुद्धू ? "

सब लोग खूब जोरसे ठठाकर हँस पड़े और वह दासी तो हँसती हँसती

जमीनपर ही लोट गई, बोली, "वाह दीदी, तुम भी खूब रंग लाना जानती हो!"

बिजलीने कुछ बनावटी क्रोध दिखलाते हुए बिगड़कर कहा, "चुप रह। बहुत बढ़कर बातें न किया कर।" और तब सत्यसे कहा, "आइए, यहाँ आकर बैठिए।" इतना कहकर बिजली सत्यको जोरसे खींचती हुई लाई और एक कुरसीपर बैठाकर स्वयं घुटनोंके बल उसके पैरोंके पास बैठ गई और हाथ जोड़कर गाने लगी—

आजु रजनि हम, भाग्ये पोहायेनु[1], पेखेनु[2] पिय मुखचंदा।
जीवन-यौवन सफल-करि माननु, दसदिसि भेलै[3] निरदंदा।
आजु मम गेह, गेहकरि माननु, आजु मम देह मेल देहा।
आजु विधि मोहे, अनुकूल होयल, टूटैल[4] सबहु संदेहा।
पाँच बान अब लाख बान हउ, मलय-पवन बहु मंदा।
अब सो न चवहुँ मोहे परिहोयेत[5] तबहुँ मानव निज देहा।

उस आदमीने जो शराब पी रहा था, उठकर सत्यके पैरोंके पास आकर साष्टांग प्रणाम किया। वह नशेमें चूर था, रोता हुआ बोला, "महाराज, मैं बड़ा पातकी हूँ, मुझे अपने चरणोंकी थोड़ी-सी रज—"

अदृष्टकी विडम्बनासे सत्यने आज स्नान करनेके बाद एक मुकटा पहने रखा था।

जो आदमी हारमोनियम बजा रहा था, वह अभी तक बहुत कुछ होशमें था। उसने कुछ सहानुभूति दिखलाते हुए कहा, "क्यों बेचारेका झूठ-मूठ तमाशा बना रही हो?"

बिजलीने हँसते हुए कहा, "वाह, झूठ-मूठ कैसे? यह सचमुचका तमाशा है, तभी तो ऐसे मजेके दिन यहाँ लाकर तुम लोगोंको तमाशा दिखला रही हूँ।— अच्छा बुद्धू, तुम्हें मेरे सिरकी कसम है, सच तो बतला दो कि तुमने मुझे क्या समझा था? मैं नित्य गंगा-स्नान करने जाती हूँ, इसलिए न तो मैं ब्राह्मो हूँ, न मुसलमान और न ईसाई। तब हिन्दूके घरकी इतनी बड़ी लड़की देखकर तुम्हें समझना चाहिए था कि या तो मैं सधवा हूँ या विधवा। भला बतलाओ तो कि फिर तुम क्या समझकर मुझसे प्रीति लगाने चले थे? मुझसे ब्याह करना चाहते थे या भुलाकर कहीं उड़ा ले जाना चाहते थे?"

---

१ व्यतीत की। २ देखा। ३ हुए। ४ टूट गये। ५ छोड़कर।

फिर खूब जोरका ठहाका लगा। इसके बाद सब मिलकर न जाने क्या क्या कहने लगे। सत्यने न तो सिर ही उठाया और न किसीका कोई जवाब ही दिया। वह मन ही मन क्या समझ रहा था, यह बतलाता ही किस तरह और बतलानेपर उसे मानता ही कौन ? खैर, जाने दो उस बातको।

बिजली सहसा चकित होकर उठ खड़ी हुई और बोली, "वाह, मैं भी खूब हूँ। अरे ओ श्यामा, जा, जल्दी जा, बाबू साहबके वास्ते कुछ जल-पान तो ले आ। बेचारे स्नान करके आये हैं और मैं अब तक सिर्फ मज़ाक़ ही कर रही हूँ।"

बोलते बोलते ही कुछ समय पूर्वका उसका व्यंग्य और उपहासकी अग्निसे उत्तप्त स्वर स्नेहयुक्त अकृत्रिम अनुतापसे सचमुच ही बिलकुल ठंडा पड़ गया।

थोड़ी ही देरमें दासीने एक थालीमें जल-पानका बहुत-सा सामान लाकर उपस्थित कर दिया। बिजली उसे अपने हाथमें लेकर सत्यके सामने घुटनोंके बल बैठ गई और बोली, "अच्छा लो, मुँह ऊपर करो, कुछ खा लो।"

सत्य अभी तक अपनी सारी शक्ति एकत्र करके अपने आपको सँभाल रहा था। अब उसने सिर उठाकर शान्त भावसे कहा, "मैं नहीं खाऊँगा।"

"क्यों, क्या तुम्हारी जात चली जायगी ? मैं क्या कोई भंगिन हूँ या मोचिन ?"

सत्य वैसे ही शान्त स्वरसे बोला, "अगर आप वह होतीं तो मैं खा लेता। लेकिन आप जो कुछ हैं, वह हैं।" बिजलीने खिलखिलाकर हँसते हुए कहा, "देखती हूँ कि कि बुद्धू बाबू भी छुरी-कटारी चलाना जानते हैं!"

यह कहकर बिजली फिर हँसी। किन्तु उसकी वह हँसी केवल शब्द ही शब्द थी, हँसी नहीं थी। इसी लिए उस हँसीमें और कोई साथ नहीं दे सका।

सत्यने कहा, "मेरा नाम सत्य है, बुद्धू नहीं। मैंने कभी छुरी-कटारी चलाना तो नहीं सीखा; परन्तु अपनी भूलका पता लगनेपर उसे सुधारना अवश्य सीखा है।"

बिजली हठात् कुछ और कहना चाहती थी, किन्तु उसे रोककर अन्तमें बोली, "क्या तुम मेरा छूआ नहीं खाओगे ?"

"नहीं।"

बिजली उठकर खड़ी हो गई। इस बार उसके परिहासके स्वरमें कुछ तीव्रता आ गई। उसने कुछ जोर देकर कहा, "तुम खाओगे जरूर, यह मैं

कहे देती हूँ। आज नहीं तो कल और कल नहीं तो दो दिन बाद, पर खाओगे जरूर। ”

सत्यने गरदन हिलाकर कहा, “ देखिए, भूल सभीसे हुआ करती है और मेरी भूल कितनी बड़ी है, यह सब समझ गये हैं। लेकिन आपसे भी भूल हो रही है। मैं कहता हूँ कि आज नहीं, कल नहीं और चार दिन बाद भी नहीं, इस जन्ममें नहीं और अगले जन्ममें भी नहीं,—मैं आपका छूआ नहीं खाऊँगा। मुझे आज्ञा दीजिए, मैं जाऊँ।—आपके निःश्वाससे मेरा रक्त सूखा जाता है। ”

उस मुखपर गहरी घृणाकी एक ऐसी स्पष्ट छाया दीख पड़ी कि वह उस शराबीकी आँखोंसे भी छुपी न रही। उसने सिर हिलाते हुए कहा, “ बिजली बीबी, यह अरसिकेषु रहस्य-निवेदनम् है ! जाने दो,—जाने दो। इसने तो सवेरेका सारा ही मजा किरकिरा कर दिया। ”

बिजलीने कोई उत्तर नहीं दिया, वह स्तम्भित होकर सत्यके मुँहकी ओर देखती हुई खड़ी रही। सचमुच उससे बहुत बड़ी भूल हो गई थी। उसने कल्पना भी नहीं की थी कि ऐसा मुँह-चोर और शान्त आदमी इस तरह बोल सकता है।

सत्य अपना आसन छोड़कर उठ खड़ा हुआ। बिजलीने कोमल स्वरसे कहा, “ थोड़ी देर और बैठो। ”

यह सुनते ही वह शराबी चिल्ला उठा, “ ऊँ हूँ हूँ ! अभी पहली चोटमें जरा जोर दिखलावेगा, अभी जाने दो। डोर ढीली कर दो, डोर ढीली कर दो। ”

सत्य कमरेसे बाहर निकल आया। बिजलीने पीछेसे जाकर उसका रास्ता रोक लिया और धीरेसे कहा, “ वे लोग देख लेते, नहीं तो मैं उसी समय हाथ जोड़कर तुमसे कहती कि मेरा बहुत बड़ा अपराध हुआ है। ”

सत्यने कोई उत्तर न दिया और मुँह फेर लिया।

बिजलीने फिर कहा, “ यह बगलवाला कमरा मेरे पढ़ने-लिखनेका है। जरा-सा चलकर उसे देख न लो ! उसे जरा अन्दर चलकर एक दफे देख लो, मैं तुमसे माफी माँगती हूँ। ”

सत्य ‘ नहीं ’ कहकर सीढ़ीकी तरफ बढ़ा। बिजलीने उसके पीछे पीछे चलते हुए पूछा, “ कल मुलाकात होगी ? ”

" नहीं। "

" क्या और कभी मुलाकात न होगी ? "

" नहीं। "

रुलाईके मारे बिजलीका गला भर आया। थूक निगलकर, जोर लगाकर और गला साफ करके उसने कहा, " मुझे विश्वास नहीं होता कि अब मुलाकात न होगी। फिर भी यदि न हो तो बोलो, क्या तुम मेरी एक बातपर विश्वास करोगे ? "

उसका भग्न स्वर सुनकर सत्य विस्मित हुआ लेकिन इधर पन्द्रह सोलह दिनोंसे जो अभिनय वह देखता आ रहा था उसके मुकाबलेमें तो यह कुछ भी नहीं था। तो भी वह मुँह फेरकर खड़ा हो गया। उसके मुखकी प्रत्येक रेखापर अविश्वासके चिह्नोंको पढ़कर बिजलीकी छाती फट गई। पर वह करती ही क्या ? हाय हाय ! विश्वास दिलानेके समस्त उपाय ही उसने अपने हाथों कूड़ेके समान झाड़ पोंछकर फेंक दिये थे।

सत्यने पूछा, " किस बातपर विश्वास करूँ ? "

बिजलीके होठ तो फड़के, पर उनसे आवाज न निकाली। उसने आँसुओंके भारसे दबी हुई आँखें एक बार पल-भरके लिए ऊपर उठाईं और फिर पहलेकी तरह नीची कर लीं। सत्यने भी वह देख लिया,—पर आँसू भी क्या नकली नहीं होते ? बिजलीने सिर उठाये विना ही समझ लिया कि सत्य प्रतीक्षा कर रहा है। पर उस बातको वह किसी तरह भी मुँहसे न निकाल सकती थी जो बाहर निकलनेके लिए कलेजेके अंजर-पंजर ढीले किये डालती थी।

वह उसे प्यार करने लगी थी और ऐसा प्यार करने लगी थी जिसका एक कण भी सार्थक करनेके लोभमें यदि सम्भव होता तो वह अपने रूपके भाण्डार—शरीर—को भी शायद एक सड़े-गले वस्त्रके समान त्याग दे सकती। पर उसपर विश्वास कौन करेगा ? वह दागी आसामी जो थी। अपने सारे शरीरमें अपराधके करोड़ों चिह्न रखते हुए, विचारकके सामने खड़ी होकर, वह किस मुँहसे यह बात कहती कि यद्यपि अपराध करना ही मेरा पेशा है, फिर भी इस बार मैं निर्दोष हूँ ? ज्यों ज्यों बिलम्ब होने लगा त्यों त्यों ही उसे बोध होने लगा कि विचारक मुझे फाँसीको आज्ञा देनेवाला ही है। पर वह उसे रोके कैसे ? सत्य अधीर हो उठा था, बोला, " अब जाता हूँ। "

बिजली सिर तो ऊँचा न कर सकी, पर इस बार उसके मुँहसे बात निकली।

उसने कहा, " जाओ। लेकिन सिरसे पैरतक अपराधोंमें डूबी होनेपर भी मैं जिस बातपर विश्वास करती हूँ, उसपर अविश्वास करके तुम अपराधी मत बनना। विश्वास रखो कि सभीके शरीरमें भगवान् निवास करते हैं और जब तक मृत्यु नहीं हो जाती, तब तक वे उसे छोड़कर नहीं जाते।"

कुछ देर चुप रहकर फिर बोली, " यह ठीक है कि सभी मन्दिरोंमें देवताकी पूजा नहीं होती, लेकिन फिर भी उनमें रहनेवाले देवता ही होते हैं। उन्हें देखकर सिर भले ही न नवा सको, किन्तु ठुकराकर भी नहीं जा सकते।"

यह कहकर जब उसने पैरोंकी आहटसे सिर उठाकर देखा तब सत्य चुपचाप धीरे धीरे चला जा रहा था।

स्वभावके विरुद्ध विद्रोह किया जा सकता है, पर उसे बिलकुल उड़ाया नही जा सकता। नारी-शरीरपर सैकड़ों अत्याचार किये जा सकते हैं, पर नारीत्वको तो अस्वीकार नहीं किया जा सकता ? बिजली नर्तकी है, फिर भी नारी तो है ! जन्म-भर सहस्रों अपराध करनेके कारण अपराधी होनेपर भी उसका यह देह नारी-देह ही तो है ! कोई घण्टे-भर बाद जब वह अपने कमरेमें लौट आई, तब उसकी लांछित अर्द्ध-मृत नारी प्रकृति अमृतके स्पर्शसे जाग उठी थी। इस थोड़ेसे समयमें ही उसके सारे शरीरमें जो अद्भुत परिवर्त्तन हो गया था उसका पता उस शराबी तकको चल गया। उसने अन्तमें मुँह खोलकर कह ही डाला, " क्यों बाईजी, तुम्हारी आँखोंकी पलकें तो भीगी हुई हैं ! दैया रे, यह लड़का भी कैसा जिद्दी है कि ऐसी बढ़िया चीजें भी उसने मुँहमें न डालीं।—अच्छा लाओ तो जी, थाली जरा इधर बढ़ा दो।"

यह कहकर शराबी खुद ही थाली खींचकर निगलने लगा।

लेकिन उसकी एक बात भी बिंजलीके कानोंमें न गई। अचानक जब उसकी नजर अपने पैरोंकी तरफ गई, तब उसे ऐसा जान पड़ा कि उनमें बँधे हुए घुँघरुओंके तोड़ोंने मानो बिच्छुओंकी तरह डंक निकालकर उसके दोनों पैरोंमें काट खाया है। उसने उन्हें जल्दीसे खोलकर फेंक दिया।

एकने पूछा, " घुँघरू खोल दिये ?"

बिजलीने सिर उठाकर कुछ मुस्कराते हुए कहा, " हाँ, अब मैं इन्हें नहीं पहनूँगी।"

" इसका मतलब ?"

"मतलब यही कि न पहनूँगी। बाईजी मर गई!"

शराबी मिठाई खा रहा था। बोला, "आखिर बीमारी क्या हुई?"

बिजलीको हँसी आ गई। यह वही हँसी थी। उसने हँसते हुए कहा, "जिस बीमारीसे दीआके जलनेपर अन्धकार मर जाता है और सूर्यके निकलनेसे रात मर जाती है, आज उसी बीमारीसे तुम लोगोंकी बाईजी सदाके लिए मर गई।"

६

चार बरस बादकी बात है। कलकत्तेके एक आलीशान मकानमें एक बड़े जमींदारके लड़केका अन्न-प्रासन है। खिलाने-पिलानेका विराट् काम-काज खत्म हो चुका है। सन्ध्याके बाद मकानके बाहरवाले प्रशस्त आँगनमें महफिलका इन्तजाम किया गया है। अनेक प्रकारके आमोद-प्रमोद और नाच-गानका आयोजन हो रहा है।

एक तरफ तीन चार नर्त्तकियाँ बैठी हैं। यही नाचेंगी और गायेंगी। दूसरी मंजिलके बरामदेमें चिककी आड़में बैठी हुई अकेली राधा-रानी नीचे आये हुए लोगोंको देख रही है। निमन्त्रित स्त्रियोंका अभी तक शुभागमन नहीं हुआ है।

सत्येन्द्रने चुपचाप पीछेसे पहुँचकर धीरेसे पूछा, "इतने ध्यानसे क्या देख रही हो?"

राधा-रानीने अपने स्वामीके मुखकी ओर देखकर हँसते हुए कहा, "वही जो सब लोग देखनेके लिए आ रहे हैं। जो बाईजी आई हुई हैं, उन्हींकी सज-धज देख रही हूँ। लेकिन, तुम अचानक यहाँ कैसे आ गये?"

स्वामीने हँसते हुए उत्तर दिया, "तुम यहाँ अकेली बैठी हो, इसीलिए कुछ बात-चीत करने आ गया।"

"चलो, जाओ!"

"सच कहता हूँ। अच्छा, यह तो बतलाओ कि इन सबमें तुम्हें कौन पसन्द है?"

राधा-रानीने 'वह' कहकर उँगलीसे उस स्त्रीकी ओर इशारा किया, जो सबसे पीछे बहुत ही सादी पोशाकमें बैठी हुई थी।

सत्यने कहा, "वह तो बहुत ही दुबली-पतली रोगिणी-सी है।"

"हो, पर वही सबसे अधिक सुन्दरी है। पर बेचारी गरीब मालूम होती है, बदनपर औरोंकी तरह गहने नहीं हैं।"

सत्येन्द्रने सिर हिलाकर कहा, "होगी। लेकिन जानती हो कि इन लोगोंकी मजूरी क्या है?"

"नहीं।"

सत्येन्द्रने हाथसे दिखलाते हुए कहा, "इन दोनोंको तो तीस तीस रुपये देने होंगे, उसे पचास देने होंगे, और जिसे तुम सबसे गरीब बतलाती हो, वह दो सौ रुपये लेगी।" राधा-रानीने चौंककर पूछा, "दो सौ! क्यों, क्या वह बहुत अच्छा गाती है?"

"गाना कभी सुना तो नहीं। लोग कहते हैं कि आजसे चार-पाँच बरस पहले बहुत ही अच्छा गाती थी, पर नहीं कहा जा सकता कि अब अच्छा गा सकेगी या नहीं।"

"तो इतने रुपये देकर बुलवाया ही क्यों?"

"इससे कमपर वह आती ही नहीं। इतनेपर भी आनेके लिए राजी नहीं थी, बहुत मुश्किलोंसे मना-मुनूकर बुलवाई गई है।"

राधा-रानीने और भी अधिक विस्मित होकर पूछा, "रुपया देना और फिर मनाना कैसा?"

सत्येन्द्रने पास पड़ी हुई एक कुरसी खींच ली और उसपर बैठकर कहा, "पहली बात तो यह है कि आजकल उसने यह पेशा छोड़ दिया है। उसमें गुण चाहे जितने हों, पर इतने रुपये जल्दी कोई देना नहीं चाहता, और इस लिए उसे कहीं आना-जाना नहीं पड़ता। यही उसकी चाल है। और दूसरा कारण है मेरी खुदकी गरज।"

इस बातपर राधा-रानीको विश्वास नहीं हुआ। तो भी आग्रहके मारे उसने कुछ आगे खिसक आकर कहा, "तुम्हारी गरज तो क्या खाक होगी; लेकिन यह तो बतलाओ, उसने पेशा क्यों छोड़ दिया है?"

"सुनोगी?"

"हाँ, कहो।"

सत्येन्द्रने क्षण-भर चुप रहनेके बाद कहा, "इसका नाम बिजली है। किसी समय—लेकिन रानी, यहाँ अभी और लोग आ जायँगे, अन्दर चलोगी?"

" चलो, चलो। " कहकर राधा-रानी तुरन्त उठ खड़ी हुई।

*   *   *

अपने स्वामीके चरणोंके पास बैठकर राधा-रानीने सब बातें सुनकर आँचलसे अपनी आँखें पोंछ लीं और अंतमें कहा, " इसी लिए आज उसका अपमान करके बदला लोगे ! तुम्हें यह अक्ल भला किसने दी ? "

उधर स्वयं सत्येन्द्रकी आँखें भी सूखी नहीं थीं। बातें करते समय कई बार उसका गला भी भर आया था। उसने कहा, " हाँ, अपमान तो है, पर हम तीनों आदमियोंके सिवा और कोई इसे न जान सकेगा। किसीको खबर भी न होगी। "

राधा-रानीने उत्तर नहीं दिया। एक बार और आँचलसे अपनी आँखें पोंछकर वह बाहर चली गई।

निमन्त्रित भले आदमियोंसे सारी महफिल भर गई थी और ऊपरवाले बरामदेसे बहुत-सी स्त्रियोंके सलज्ज चीत्कार चिकका आवरण भेदकर बाहर निकल रहे थे। और सब नर्त्तकियाँ तो प्रस्तुत हो गई थीं, पर बिजली अभीतक सिर झुकाये चुपचाप बैठी हुई थी। उसकी आँखोंसे आँसू बह रहे थे। उसने पहले जो धन एकत्र किया था, वह इधर लम्बे पाँच बरसोंमें समाप्त हो चुका था और उसीके अभावकी मारसे आज उसे विवश होकर वही कार्य स्वीकार करना पड़ा, जिसका वह शपथपूर्वक परित्याग कर चुकी थी। लेकिन वह सिर उठाकर खड़ी नहीं हो सकती थी। अभी दो घण्टे पहले उसे इस बातकी कल्पना भी नहीं थी कि अपरिचित पुरुषोंकी सतृष्ण दृष्टिके सामने मेरा शरीर इस प्रकार पत्थरकी तरह भारी हो जायगा और पैर इस प्रकार भँजकर टूट जाना चाहेंगे।

" आपको बुला रही हैं। "

बिजलीने सिर उठाकर देखा कि बारह तेरह बरसका एक लड़का पास ही खड़ा है। उसने ऊपरवाले बरामदेकी ओर संकेत करके फिर कहा, " बहूजी आपको बुला रही हैं। "

बिजलीको विश्वास नहीं हुआ। उसने पूछा, " कौन बुलाता है ? "

" बहूजी बुलाती हैं। "

" तुम कौन हो ? "

"मैं उनका नौकर हूँ ।"

बिजलीने सिर हिलाकर कहा, "नहीं, मुझे नहीं बुलाती होंगी, तुम फिर जाकर एक बार पूछ आओ।"

लड़का थोड़ी देर बाद फिर आकर बोला, "आपका ही नाम बिजली है न? आपको ही बुला रही हैं। आइए मेरे साथ, बहूजी खड़ी हैं।"

बिजलीने जल्दीसे अपने पैरोंके घुँघरू खोल दिये और वह उस लड़केके पीछे पीछे मकानके अन्दर चली गई। उसने समझा कि शायद मालकिनकी कोई खास फरमाइश है, इसी लिए मुझे बुलाया है।

सोनेके कमरेके दरवाजेके पास राधा-रानी लड़केको गोदमें लिए हुए खड़ी थी। कुछ तो घबराहटसे और कुछ संकोचसे धीरे धीरे ज्यों ही बिजली उसके सामने जाकर खड़ी हुई, त्यों ही राधा-रानी आदरपूर्वक हाथ पकड़कर उसे अन्दर खींच ले गई और एक कुरसीपर उसे जबरदस्ती बैठाते हुए हँसकर बोली, "बहन, मुझे पहचान सकती हो?"

बिजली आश्चर्यसे हतबुद्धि हो रही। राधा-रानीने अपनी गोदके लड़केको दिखलाते हुए कहा, "अगर तुमने अपनी छोटी बहनको नहीं पहचाना, तो इसका तो खैर कोई दुःख नहीं। लेकिन अगर इसे भी न पहचान सकोगी, तो मैं सचमुच ही तुमसे बहुत लड़ाई करूँगी।" और इतना कहकर वह मुस्कराने लगी।

इस प्रकारकी मुस्कराहट देखकर भी बिजलीके मुँहसे कोई बात न निकल सकी। फिर भी उसका अन्धकारपूर्ण आकाश धीरे-धीरे स्वच्छ होने लगा। उस अनिन्द्य-सुन्दर मातृ-मुखसे हटकर उस ताजे खिले हुए गुलाबके समान शिशुके मुखकी ओर उसकी टकटकी लग गई। राधा-रानी निस्तब्ध हो रही। बिजली बहुत देर तक टक लगाकर उस बालककी ओर देखती रही, फिर सहसा उसने खड़े होकर दोनों हाथ पसारकर उस बालकको अपनी गोदमें ले लिया और उसे जोरसे अपने कलेजेसे लगाकर वह रो पड़ी। राधा-रानीने पूछा, "क्यों बहन, पहचान लिया?"

"हाँ बहन, पहचान लिया।"

राधा-रानीने कहा, "बहन, तुमने समुद्र मन्थन करके उसमेंसे निकला हुआ विष तो स्वयं पी लिया और समस्त अमृत अपनी इस छोटी बहनको दे दिया। उन्होंने तुम्हें चाहा था, इसीलिए मैं उन्हें पा सकी हूँ।"

सत्येन्द्रका एक छोटा-सा फोटो अपने हाथमें लेकर बिजली टक लगाकर देख रही थी। उसने सिर उठाकर मुस्कराते हुए कहा, "बहन, विषका विष ही तो अमृत है। पर मैं भी वंचित नहीं हुई हूँ। उस विषने इस घोर पापिष्ठाको भी अमर कर दिया है।"

राधा-रानीने उसकी इस बातका कोई उत्तर न देकर कहा, "क्यों बहन, एक बार उनसे मुलाकात करोगी?"

बिजलीने क्षण-भर तक आँखें बन्द करके स्थिर होकर कहा, "नहीं बहन, चार बरस पहले जिस दिन ये इस अस्पृश्याको पहचानकर मारे घृणाके मुँह फेरकर चले आये, उस दिन मैंने दर्पके साथ कहा था कि फिर मुलाकात होगी और तुम फिर आओगे। पर मेरा वह दर्प नहीं रहा, वे फिर नहीं आये। पर आज मेरी समझमें आ रहा है कि क्यों दर्पहारी भगवानने मेरा वह दर्प तोड़ दिया। बहन, वे तोड़कर किस प्रकार फिरसे गढ़ देते हैं और छीनकर किस प्रकार लौटा देते हैं, इसे जितनी अच्छी तरह मैं जानती हूँ और कोई नहीं जानता।" एक बार और आँचलसे अच्छी तरह आँखें पोंछकर वह बोली, "मैंने अत्यधिक हार्दिक कष्टके कारण भगवानको निर्दय निष्ठुर कहकर अनेक दोष दिये हैं; परन्तु अब मैं समझ रही हूँ कि इस पापिष्ठापर उन्होंने कितनी दया की है। यदि वे मुझे उन्हें लौटा ला देते, तो मैं सब तरफसे मिट्टी हो जाती। उन्हें भी न पाती और खुदको भी खो देती।"

राधा-रानीका गला रोनेसे रुँध गया था, इसलिए वह कुछ भी न कह सकी। बिजली फिर कहने लगी, "सोचा था कि यदि कभी मुलाकात होगी, तो उनके पैर पकड़कर फिर एक बार माफी माँग देखूँगी। लेकिन अब इसकी कोई आवश्यकता नहीं रही। बहन, मुझे केवल यह चित्र दे दो। इससे अधिक मैं और कुछ नहीं चाहती। अगर चाहूँ भी, तो भगवानको सहन न होगा।—अच्छा, अब मैं जाती हूँ।" यह कहकर बिजली खड़ी हो गई।

राधा-रानीने भर्राए हुए स्वरसे पूछा, "अब फिर कब भेंट होगी बहन?"

"नहीं, अब भेंट नहीं होगी बहन। मेरा एक छोटा-सा मकान है, उसे बेचकर जितनी जल्दी हो सकेगा, यहाँसे चली जाऊँगी। पर बहन, क्या एक बात बतला सकोगी? आखिर इतने दिनों बाद हठात् उन्होंने क्यों मुझे

एकाएक स्मरण किया ! और जब उनका आदमी मुझे बुलाने गया तब क्यों उसने एक झूठा नाम बतलाया ! ”

मारे लज्जाके राधा-रानीका मुख लाल हो गया और वह सिर झुकाकर चुप रह गई ।

बिजलीने कुछ देर तक सोचनेके बाद कहा, “ मैं समझ गई । मेरा अपमान करना चाहते थे, इसलिए ! है न यही बात ! इसके सिवा और तो कोई कारण नहीं मालूम होता कि क्यों उन्होंने इस प्रकार मुझे यहाँ बुलानेके लिए इतनी चेष्टा की । ”

राधा-रानीका सिर और भी नीचे झुक गया । बिजलीने हँसकर कहा, “[illegible]समें तुम्हारे लज्जित होनेकी कौन-सी बात है ? लेकिन उनकी भी भूल है । उनके चरणोंमें मेरे शत-कोटि प्रणाम जताकर कह देना कि यह बात होनेकी नहीं । अब अपना कहलाने लायक मेरे पास कुछ है ही नहीं, तब यदि वे अपमान करेंगे, तो सारा अपमान स्वयं उन्हींका होगा । ”

“ अच्छा बहन, नमस्कार । ”

“ बहन, नमस्कार । मैं अवस्थामें तुमसे बहुत बड़ी हूँ, फिर भी तुम्हें आशीर्वाद देनेका अधिकार मुझे नहीं है ।—मैं काय-मनसे ईश्वरसे प्रार्थना करती हूँ बहन, तुम्हारे हाथकी चूड़ियाँ अक्षय हों । जाती हूँ । ”

समाप्त